सोमयाजि श्रीरामचन्द्रविरचितम्

समरसारम्

सान्वय, विजयासंस्कृतटीका, हिन्दीभाषया च समलङ्कृता

व्याख्याकारः
आचार्यरामजन्म मिश्र

चौखम्भा संस्कृत संस्थान · वाराणसी

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२३४

सोमयाजि श्रीरामचन्द्रविरचितम्

समरसारम्

सान्वय, विजयासंस्कृतटीका, हिन्दीभाषया च समलङ्कृता

व्याख्याकारः

आचार्यरामजन्म मिश्र

ज्योतिषशास्त्राचार्य (गणित-फलित) एम. ए. (हिन्दी)

अध्यक्ष

ज्योतिष (पञ्चाङ्ग) विभाग, संस्कृतविद्याधर्म विज्ञान संकाय

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी–५

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ११३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
234
*****

SAMARASĀRAM

OF

SOMAYĀJI ŚRĪ RĀMACHANDRA

With Anwaya, Vijayā Sanskrit and Hindi Commentaries

Commentator
ĀCHĀRYA RĀMAJANMA MISHRA
Joytish Shāstrāchārya (Ganit-Phalit), M. A. (Hindi)
Head,
Joytish (Panchānga) Department, Faculty of
Sanskrit Learning and Theology
Banaras Hindu University, Varanasi-5

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139
Jadav Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI (INDIA)

भूमिका

समरसार इस नाम से ही यह व्यक्त होता है कि यह ग्रन्थ युद्ध सम्बन्धी विचारों या फलादेशों का है। हमारा ज्योतिषशास्त्र संहिता, होरा और सिद्धान्त इन तीन विभागों में प्रविभक्त है। यह समरसार जो कि रामचन्द्र सोमयाजी द्वारा निर्मित है, संहिताग्रन्थों में आता है। अपने मङ्गलाचरण में स्वयं आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है 'वक्ष्ये युद्धजयोपायं धार्मिकाणां महीक्षिताम् ।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ में धार्मिक राजाओं के द्वारा युद्ध में जय के निमित्त जो उपाय या उपचार होता है, उसे कहा गया है। वास्तव में यह ज्योतिषविद्या वेदचक्षु स्वरूप है तथा इसके द्वारा श्रौत-स्मार्त सभी कार्यों की सिद्धि होती है—

'वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम् ।
विनैतदखिलं कार्यं श्रौतं स्मार्तं च सिद्धयति ।।

आचार्य रामचन्द्र सोमयाजी का समय लगभग ३७१ शकाब्द माना गया है। ये सूर्यदास के पुत्र थे। कहीं इन्हें रामवाजपेयी भी कहा गया है। वैसे अपने ग्रन्थ समरसार में इन्होंने कहीं भी अपने इस नाम के साथ वाजपेयी शब्द नहीं जोड़ा है। अपने पिता के सम्बन्ध में ग्रन्थ के अन्त में अपने पूर्वजों का नाम कहते हुए लिखते हैं—

वंशे वत्समुनीश्वरस्य शिवदासाख्या दुरुख्यातित ।
सम्राडग्निचिदापयस्य जनकः श्रीसूर्यदासोऽजनि ।।

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि इनके पितामह का नाम शिवदास, पिता का नाम सूर्यदास और माता का नाम विशालाक्षी था और इनका परिवार नैमिषारण्य में रहता था। इस ग्रन्थ के विषय में अतिसंक्षेप में भारतीय ज्योतिष इतिहास के मराठी-लेखक श्रीबालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है। उन्होंने विशेष कुछ लिखना उचित नहीं समझा। श्री सुधाकर द्विवेदी ने अपने ज्योतिष के इतिहास के गणकतरङ्गिणी में कहीं भी इनके नाम की अथवा इनके ग्रन्थ की चर्चा नहीं की। तीसरे इतिहास-कार डा० गोरखप्रसाद तथा चौथे इतिहासकार श्री नेमिचन्द जैन ने भी अपने भारतीय ज्योतिष नामक इतिहासग्रन्थ में इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है।

वास्तव में यह ग्रन्थ स्वरशास्त्र का एक बहुत ही छोटा किन्तु महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्य श्री रामचन्द्र सोमयाजी ने स्वरशास्त्रों का सारभाग लेकर मात्र ८५ श्लोकों में इसे देकर गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। इसमें छोटे-छोटे अत्यूपयोगी मात्र दस प्रकरण दिये गये हैं। यद्यपि दो राजाओं के मध्य होनेवाले युद्ध में किसकी विजय होगी इसी उद्देश्य को सामने रखकर इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। फिर भी अन्य कार्यों के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। वादी प्रतिवादी के लिए भी इसके द्वारा विचार किया जा सकता है। प्रथम प्रकरण के आठ श्लोंकों में तीन प्रकार के जयपराजय चक्रों के द्वारा दो राजाओं अथवा वादी-प्रतिवादी में कौन सफल होगा इसके ज्ञान का प्रकार दिया गया है। इसके बाद द्वितीय अध्याय के अन्दर भी जयपराजय की ही अन्य विधियाँ योग-स्वर, वर्णस्वर के आधार पर दी गयी हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में युद्ध के लिए यात्रा करनेवाले दो राजाओं में किसकी विजय होगी। किस प्रकार और किस समय यात्रा करके अपने थोड़ी सेना के द्वारा भी अधिक सेनावाले शत्रु को

पराभूत किया जा सकता है। प्रवल से प्रवल किले को कैसे ध्वस्त किया जा सकता है। न्यायालय में उपस्थापित न्यायार्थ याचिका में किसकी विजय होगी। अथवा कौन सा नौकर स्वामी के लिये लाभप्रद सिद्ध होगा। दाम्पत्य स्नेह के लिए कौन स्वर-संचालन लाभदायक सिद्ध होगा। किन ओषधियों के धारण करने से शस्त्र का आघात निष्फल होगा इत्यादि साङ्गोपाङ्ग इस ग्रन्थ में दिया गया है।

यह ग्रन्थ सर्वसाधारण की समझ में सरलता से आ सके और इसका भाव स्पष्ट रूप से विदित हो सके। इसी लिए उदाहरण आदि के द्वारा इसकी टीका को सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है। यदि भ्रमवश कहीं त्रुटि रह गयी हो तो इसको सुधार कर विद्वज्जन हमें सूचित करने की कृपा करें जिससे अगला संस्करण और भी उत्तम रूप से प्रकाशित किया जा सके।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी के श्रीमोहनदासजी ने जिस उदारता का परिचय दिया है वह श्लाघनीय है।

रामजन्म मिश्र
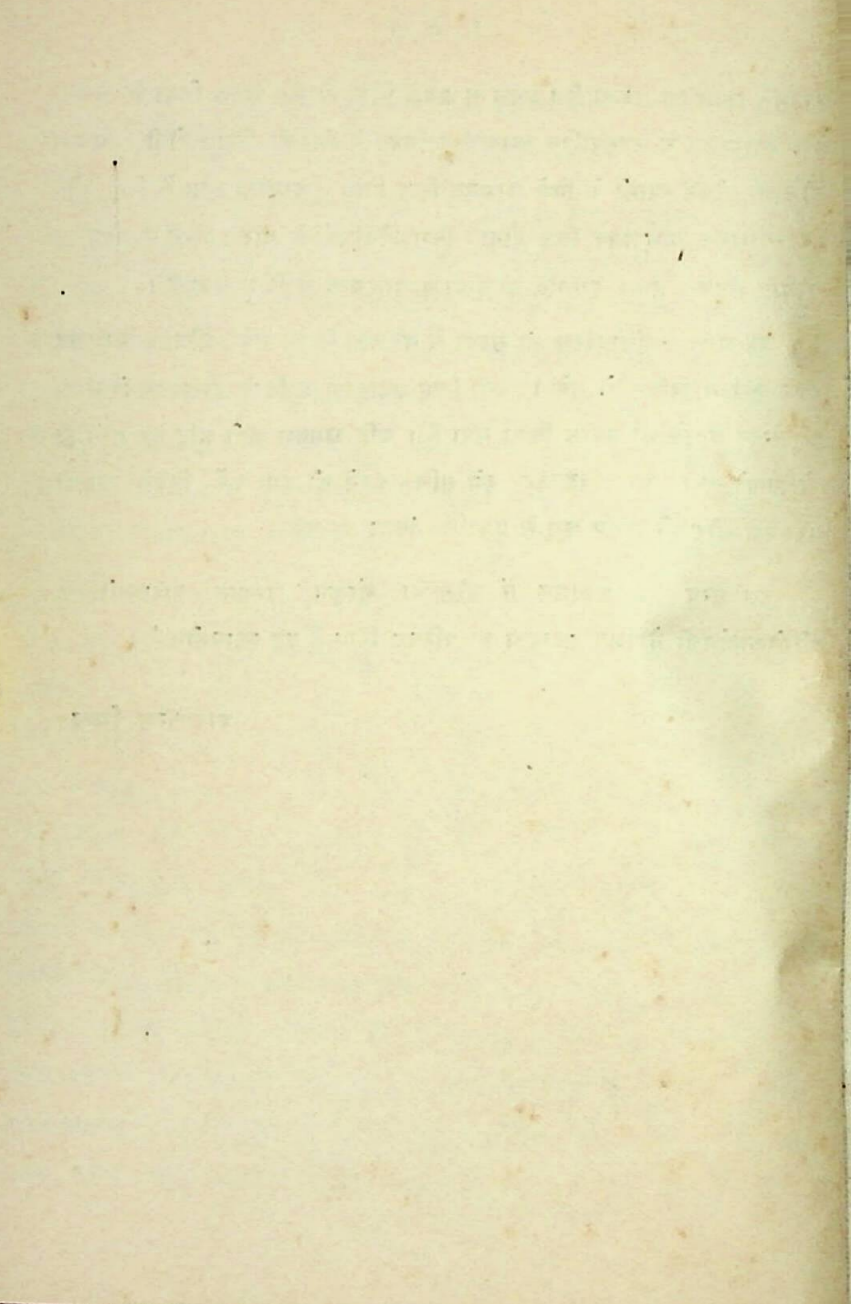
॥ श्री भास्करो विजयते ॥

सोमयाजि श्रीरामचन्द्रविरचितम्

समरसारम्

सान्वय विजयासंस्कृतटीका, हिन्दीभाषया च समलङ्कृता

ग्रन्थकारकृत् मङ्गलाचरणम्

नत्वा गुरून्समालोक्य स्वरशास्त्राणि भूरिशः।
वक्ष्ये युद्धजयोपायं धार्मिकाणां महीक्षिताम् ॥ १ ॥

अन्वयः—गुरून् नत्वा भूरिशः शास्त्राणि समालोक्य धार्मिकाणाम् महीक्षितां युद्धजयोपायम् वक्ष्ये।

विजया—गृणन्ति हितमुपदिशन्ति ते गुरवस्तान् गुरून्=शिक्षकान्। नत्वा=प्रणम्य। भूरिशः=वहुशः। स्वरशास्त्राणि=स्वरबोधकग्रन्थाणीत्यर्थः। समालोक्य=सम्यग्विचार्य। धार्मिकाणां=धर्मात्मनां। महीक्षिताम्=राज्ञाम्, भूपानाम्। युद्धे जयः युद्धजयः तस्योपायः युद्धजयोपायः तं युद्धजयोपायम्=युद्धे जयस्य विधिरित्यर्थः। वक्ष्ये=कथयिष्ये।

भाषा—गुरुजनों को प्रणाम कर, अनेक स्वरशास्त्रों का अध्ययन करके, धार्मिक राजाओं के लिए युद्ध में विजयप्राप्ति का उपाय कहता हूँ ॥ १ ॥

स्वरशास्त्राणां मतैक्ये सन्देहं दर्शयतिः—

बहुधा विदधे सदाशिवोऽत्र स्वरशास्त्राणि तदेकवाक्यतां तु।
भगवानयमेव वेद सम्यग्गुरुमार्गानुगतोऽपरस्तु लोकः ॥ २ ॥

अन्वयः—अत्र सदाशिवः बहुधा स्वरशास्त्राणि विदधे तस्य सम्यक् एकवाक्यतां तु अयमेव भगवान् वेद अपरः लोकः तु गुरुमार्गानुगतः।

विजया—अत्र युद्धजयोपायहेतोः सदाशिवः भगवान् शंकरः बहुधा=अनेकशः। स्वरशास्त्राणि=स्वरग्रन्थान्। विदधे=चकार, कृतवान्। तस्य सम्यक्=सर्वतोभावेन। एकवाक्यताम्=ऐकमत्यम्। तु अयमेव भगवान्=भगवान् सदाशिव एव। वेद=जानाति। अपरः=अन्यः। लोकः=सामान्य जनः। गुरुमार्गानुगतः=गुरूपदिष्टं मार्गम् अनुगतो भवति यत्किञ्चिद् गुरुणा उपदिष्टं तदेव जानाति नत्वन्यत्।

भाषा—युद्ध में कैसे विजय प्राप्त की जाय इसके लिए भगवान् शंकर ने अनेक स्वरशास्त्रों का निर्माण किया है। उन ग्रन्थों की एकवाक्यता के सम्बन्ध का ज्ञान भी अच्छी तरह उन्हीं को है। अन्य सामान्य जन तो गुरुपरम्परागत ज्ञान को ही प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

ग्रन्थमहिमा निरुपयति:—

वक्ष्याम्यहं यदिह किंचन सर्वसारमेतावदेव परिचिन्त्यनृपः प्रवृत्तः।
एकोपि कोटिभटलोलपतङ्गदीपलीलां मुदानुभवतु स्फुटकौतुकेन ॥ ३॥

अन्वय:—अहं यत् इह किंचन सर्वसारं वक्ष्यामि। एतावदेव परिचिन्त्य नृपः प्रवृत्तः एकोपि स्फुटकौतुकेन कोटिभटलोलपतङ्गदीपलीलां मुदानुभवतु।

विजया—अहम् = आचार्यः (सोमयाजि श्रीरामचन्द्रः) यत्=किञ्चन, इह=अस्मिन् ग्रन्थे सर्वसारं=सर्वेषां ग्रन्थानां तत्वम् सारभूतम्, वक्ष्यामि=कथयिष्यामि, एतावदेव=एतावन्मात्रमेव, परिचिन्त्य=विचार्य, नृपः=जयाकांक्षीराज्ञः, प्रवृत्तः=चलितः (सन्) एकोऽपि=एकाकिनोऽपि, स्फुटकौतुकेन=प्रत्यक्ष लीलारूपेण, कोटिभटलोलपतंगदीपलीलां = कोटिभटा एव लोलपतगा चंचलकीटा इव दीपे (युद्धे) पतनोन्मुखा तेषां लीलां इति कोटिभटलोलपतंगदीपलीलां, मुदा=आनन्देन, अनुभवतु =अनुभवं च करोतु। अर्थात् यथा ज्वलनशीलाः पतंगा दूरादागत्य दीपोपरि निपत्य भस्मी च भवन्ति तथा एकं राजानम् सह बहवः शूराः युयुत्सवः आक्रम्य पतंगवद्भस्मी भवन्ति। म्रियन्तेत्यर्थः।

भाषा—मैं अनेक ग्रन्थों का सार संग्रह कर जो कुछ भी इस समरसार नामक ग्रन्थ में लिख रहा हूँ मात्र इतना ही विचारकर युद्धभूमि में प्रस्थान करनेवाला अकेला भी करोड़ों शूर शत्रुओं को उसी प्रकार आनन्दपूर्वक नष्ट कर देता है जैसे दीपक पर गिरने वाले पतंगों (कीटों) को दीपक नष्ट कर डालता है ॥ ३ ॥

गोपनीयतां कथयति—

नैतद्देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यग्फलाय।
अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवीकोपान्निर्दहेन्नो चिराय ॥ ४ ॥

अन्वय:—एतत् ज्ञानं जातु दुर्विनीताय न देयम्। तत् हि सम्यक् फलाय

गुप्तम् । हि अस्थाने स्थाप्यमाना एव वाचां देवीकोपात् नो चिराय निर्दहेत् ।

विजया--एतद् =स्वरशास्त्रस्य, ज्ञानं जातु=कदाचिदपि, दुर्विनीताय= दुष्टप्रकृतेः शिष्याय न देयम् । तत्=स्वरशास्त्रं हि = इति निश्चयेन, सम्यक्फलाय=निरन्तर फलदा यथा स्यात्तथा, गुप्तम्=रक्षितम् । हि = इति निश्चयेन, अस्थाने=कुत्सितजने, स्थाप्यमाना = दीयमाना एव=झटिति, वाचां देवी = सरस्वती, कोपात्=क्रोधात् शापाद्वा शीघ्रमेव, निर्दहेत्=विनश्येत् ।

भाषा—इस स्वरशास्त्र के ज्ञान को कभी भी दुष्टप्रकृति वाले शिष्य को नहीं देना चाहिए । क्योंकि इसकी सफलता के लिए गोपनीयता आवश्यक है । यदि दुष्टों को इस विद्या का ज्ञान कराया जाय तो सरस्वती देवी के शाप से वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।

नोट—दुष्ट शिष्यों को उत्तम ज्ञान नहीं देना चाहिए । कारण यह है कि दुष्टों के अन्दर उस शास्त्र की मर्यादा के पालन की क्षमता न होने से वह उसका दुरुपयोग करने लगता है जिससे विश्वास खोकर वह स्वयं तो नष्ट होता ही है शास्त्र को भी ले डूबता है ।

विनयावनताय देयमिति कारणं कथयति—

विनयावनताय दीयमाना प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय ।
उपकृत्यनुचिन्त्यकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेव ॥ ५ ॥

अन्वयः—विनयावनताय दीयमाना कल्पलतेव सत्फलाय प्रभवेत् । शास्त्राणि उपकृत्यनुचिन्तकानि (भवन्ति) उपकारस्य पदं हि साधुरेव ।

विजया—विनयेन अवनताय विनयावनताय=विनयसम्पन्नायेत्यर्थः । दीयमाना (विद्या) कल्पलतेव=कल्पतरुवत् सत्फलाय=उत्तमफलाय, प्रभवेत्=भवेत्, यतः शास्त्राणि उपकृत्यनुचिन्तकानि=उपकृतिं अनुचिन्तयतीति उपकृत्यनुचिन्तकः तानि उपकृत्यनुचिन्त्यकानि = परोपकारपरायणानीत्यर्थः (भवन्ति) । उपकारस्य पदं स्थानं साधुरेव भवेत् नान्यः । अतएव साधोरेव उपकारः कर्त्तव्यः यतो दुष्टस्योपकाराद्वैपरीत्यं फलं भवति ।

भाषा—विनयसम्पन्न शिष्यों को दी हुई विद्या कल्पवृक्ष की तरह फलवती होती है । शास्त्र उपकार के लिए ही हैं अतः शास्त्रचिन्तन करने वाले साधुजन को ही इसे देना चाहिए ।

प्रथम जयपराजयचक्रमाह—

शं५ मे५ गं३ गा३ ग३ ति६ स्ते६ द८ ह८ द८धि९ तदधः सर्गषण्ढान्विनाचः
काद्यास्त्र्यालीष्वृते ङ्ञमपितुभटयोर्नामवर्णोत्थ संख्ये।
खा २ प्ते शेषेप्यशेषे विजयपरिभवौ दा ८ प्तिशेषे न० व ४ स्ते ६
मा५ सा७ ली३ का१ रि२ जेता क्रमत इह मतोऽग्रोऽग्र्य इत्युक्तमाद्यैः॥

अन्वयः—शं मे गं गा ग ति स्ते द ह द धि, तदधः, सर्गषष्ठान्विना अचः (तदधः) त्र्यालिषु ङञमपि अवृत्ते काद्याः (वर्णा स्थाप्या) सुभटयोर्नामवर्णोत्थ-संख्ये खाप्ते शेषेप्यशेषे विजयपरिभवौ (ज्ञेयौ)। (पुनः) दाप्ति (सति) शेषे इह न० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ लि ३ का १ रि २ अग्र्योऽग्र्यजेता इति मतः आद्यैः उक्तः।

विजया—'कादयोङ्का ९ ष्टादयोङ्काः ९ पादयः पञ्च ५ कीर्तिताः। यादयोष्टौ ८ तथा प्राज्ञैर्गणकै र्बुद्धिमत्तरैः' इत्यादिना शं=५, मे=५, गं=३, गा=३, ग=३, ति=६, स्ते=६, द=८, ह=८, द=८, धि=९ (एते एकादशवर्णाः साङ्काः प्रथमपंक्तौ स्थाप्याः) तदधः सर्गौ विसर्गः षण्ढा नपुंसकवर्णाः ऋ ॠ ऌ ॡ इत्यादयः एतान्विना रहिताः अचः=स्वरवर्णास्थाप्यास्तदधः। सर्गषण्ढान्विना अचः=स्वरवर्णाः (स्थाप्याः) त्र्यालिषु = त्रिपङ्क्तिषु, ङ ञ मपि=ङ ञ संयुक्ताक्षरैः च अवृते=रहिते यथा सर्गषष्ढान्विनाः अचः स्थाप्यास्तथैव ङ ञ एवं संयुक्ताक्षरैः (क्ष त्र ज्ञ) रहितैः काद्या=ककारादयः व्यञ्जनवर्णाः स्थाप्याः। एवं सुभटयोर्नामवर्णोत्थसंख्ये = योद्धयोः वादिप्रतिवादि जनयोर्नाम्नि ये वर्णास्तदुत्पन्नाः च येङ्काः ते खाप्ते द्विभक्ते शेषे १ अशेषे०, २ च क्रमशः विजयः=जयः, परि-भवः=पराभवश्च ज्ञेयः। पुनस्ते एव वर्णाङ्काः दाप्ते=अष्टभक्ते सति यदि न० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ ली ३ का १ रि=इत्येते अङ्काः अवशिष्टास्तदा इह यस्याङ्काः अग्र्यः=अग्रिमः, सः अग्र्यः=जेता इति एवं मतः आद्यैः पूर्वाचार्यैः उक्तम्=कथितम्।

विशेषः—यथा ज्योतिषग्रन्थेषु 'क ट प य वर्गं नव नव पञ्चाष्ट न ञ ज्ञाः शून्यबोधकाः इति' एवं 'कादिर्नवाङ्का नवटादिरङ्का पादिश्शरा यादि भवन्ति चाष्टौ।' ञे ञे शून्ये स्वराश्च शून्याः इति॥ भणितं तथैव सोमयाजि श्रीराम-चन्द्र आचार्यः—

कादयोङ्का ९ ष्टादयोङ्का ९ पादयः ५ कीर्तिताः ।
यादयोष्टौ ८ तथा प्राज्ञैर्गणकैर्बुद्धिमत्तरैः ॥

इति लाघवार्थं गोपनार्थं च कल्पितम् । कादयः ९ यथा क १ ख २ ग ३ घ ४ ङ ५ च ६ छ ७ ज ८ झ ९ । टादयः ९ यथा ट १ ठ २ ड ३ ढ ४ ण ५ त ६ थ ७ द ८ ध ९ । पादयः ५ यथा प १ फ २ ब ३ भ ४ म ५ । यादयः ८ यथा य १ र २ ल ३ व ४ श ५ ष ६ स ७ ह ८ एवमक्षरैरङ्काः बोध्यम् ।

भाषा—ग्रन्थकार आचार्य सोमयाजि श्रीरामचन्द्र ने ग्रन्थ की गोपनीयता के लिए अङ्कों की कल्पना अक्षरों के द्वारा किया है । जैसे:—क १, ख २, ग ३, घ ४, ङ ५, च ६, छ ७, ज ८, झ ९ । ट १, ठ २, ड ३, ढ ४, ण ५, त ६, थ ७, द ८, ध ९ । प १, फ २, ब ३, भ ४, म ५ । य १, र २, ल ३, व ४, श ५, ष ६, स ७, ह ८ । और इन्हीं अङ्कों के द्वारा हजारों की संख्या में अङ्कों को अक्षरों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । 'अंकानां वामतो गतिः' मानकर तथा न ञ को शून्य मानकर न० ट १=१०, ख २ ल ३=३२, र २ य ७=७२, म ५ र २ ट १ = १२५ एवं लं ३ बो ४ द ८ र २ = २८४३ इत्यादि अंक समझना चाहिए ।

जय-पराजय चक्र निर्माण के लिए १२ खड़ी और ७ पड़ी रेखाओं के द्वारा ४२ कोष्टक का एक चक्र बनाना चाहिए और ऊपर के ११ कोष्ठकों में क्रमशः शं ५ में ५ गं ३ गा ३ ग ३ ति ६ स्ते ६ द ८ ह ८ द ८ घि ९ लिखना चाहिए तथा उसके नीचे ११ कोष्टकों में सर्गं अर्थात् अः तथा षण्ढ अर्थात् ऋ ॠ ऌ ॡ के अतिरिक्त अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं इन स्वरों को लिखना चाहिए तथा नीचे के तीन कोष्ठकों में ङ् और ञ के अतिरिक्त व्यञ्जनों को लिखना चाहिए । जैसे प्रथम पंक्ति में क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड़ । द्वितीय पंक्ति में ढ ण त थ द ध न प फ ब भ । तृतीय पंक्ति में म य र ल व श ष स ह ० ० तथा सबसे नीचे के कोष्ठकों में न ० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ लि ३ का १ रि २ ० ० ० लिखना चाहिए । इस प्रकार प्रथम जय-पराजय चक्र बनता है ।

इसके द्वारा वादी-प्रतिवादी दोनों राजाओं के या व्यक्तियों के नाम के अनुसार आये हुए अंकों में २ का भाग देने से शेष १ विजय और ० में पराजय होता है । यदि तुल्य अंक शेष बचे तो दोनों की समानता या सन्धि होती है । पुनः उन्हीं

अंकों में ८ का भाग देने पर यदि ०, ४, ६, ५, ७, ३, १ या २ अंक बचे तो जिसका अंक अग्रिम होता है। वह विजयी होता है।

प्रथम जय-पराजयचक्रम्

शं ५	मे ५	गं ३	गा ३	ग ३	ति ६	स्ते ६	द ८	ह ८	द ८	घि ९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०
न ०	व ४	स्ते ६	मा ५	सा ७	लि ३	का १	रिं २	०	०	०

उदाहरण—राम और रावण का जय-पराजय चक्र से विचार करना है। प्रथम जय-पराजय चक्र के अनुसार र् + आ + म् + अ (३ + ५ + ५ + ५) = १८ तथा र् + आ + व् + अ + ण् + अ (३ + ५ + ३ + ५ + ५ + ५) = २६ का अंक प्राप्त हुआ। इन दोनों में २ का भाग देने से राम और रावण दोनों का शेष ० बचने से दोनों में साम्यता सिद्ध होती है।

दूसरी रीति से राम १८ और रावण २६ के अंकों में ८ का भाग देने पर भी शेष २ समान बचता है अतः इस विधि से भी दोनों की साम्यता ही आती है।

नोट—जय-पराजय चक्र की सभी रीतियों का फल प्राप्त करने के बाद ही अन्तिम निर्णय करना चाहिए। अतः आगे के जय-पराजय चक्रों को देखकर इसका निर्णय करें॥ ६ ॥

द्वितीय जय-पराजयचक्रम्—

अङ्कास्तुलारिभजतीधभुगानकाः स्यू रूपै १२ रतोऽक्षरमितीरहिते विधाय।
तस्मात्पुनर्दं८ हृति शेष बहुत्वतः स्याज्जेता स एव बलपः सुधिया विधेयः॥

अन्वयः—'तु६ ला ३ रि २ भ ४ ज ८ ती ६ ध ९ भु ४ गा ३ न ० का १'

अंका: स्यूः अतो (तदधः) अक्षरम् इति रूपैः रहिते विधाय। तस्मात्पुनर्दहृति शेष बहुत्वतः जेता स्यात् स एव बलपः (इति) सुधिया विधेयः।

विजया—'तु=६, ला=३, रि=२, भ=४, ज=८, ती=६, ध = ९, भु=४, गा=३, न = ०, का=१' एते अंका: क्रमेण पूर्ववत् एकादशसु कोष्ठकेषु तिर्यक्क्रमेण लेख्याः। अतो=पुनस्तदधः अक्षरमिति = ङ ञ रहितान्यक्षराणि च स्थाप्यानि। अनेन प्रकारेणागतानङ्कान् रूपैः द्वादशभिः रहिते ऊनिते सति ये अंका: पुनः तस्मात् द ८ हृति (यदि) शेष बहुत्वः बाहुल्यः स्यात्तदा सः जेता स्यात् स एव बलपः बलिष्ठः इति सुधिया सुबुद्धिना विधेयः इति।

भाषा—प्रथम जय-पराजय चक्र की भाँति कोष्टक बनाकर उसमें ऊपर की प्रथम पंक्ति में क्रमशः तु ६, ला ३, रि २, भ ४, ज ८, ती ६, ध ९, भु ४, गा ३, न ०, का १ इनको स्थापित करें तथा द्वितीय पंक्ति में स्वर तथा तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम पंक्ति में व्यञ्जन वर्णों को लिखे। इस प्रकार बने कोष्टक के द्वारा वादी-प्रतिवादी योद्धाओं के नामाक्षर से उपलब्ध संख्या में १२ घटा कर ८ का भाग देने से जिसका शेष अधिक हो वह विजय प्राप्त करता है।

द्वितीय जय-पराजय चक्रम्—

तु ६	ला ३	रि २	भ ४	ज ८	ती ६	ध ९	भु ४	का ३	न ०	का १
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०

उदाहरण—प्रथम जय-पराजय चक्र की तरह इस चक्र के अनुसार राम, रावण का अङ्क र् २ + आ ३ + म् ६ + अ ६=१७ तथा र् २+आ ३ व् ८ अ ६ ण् ३ अ ६ = २८ प्राप्त हुआ। इसमें १२ घटाने पर ५ और ६

बचा तथा ८ का भाग दिया तो राम का शेष ५ और रावण का ० बचा अतः यहाँ राम को विजय प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तृतीय जय पराजय चक्रम्—

वर्गाष्टकाङ्का दशतिघासकालारि तद्युतौ ।
नाम्नोः सभाजितायां स्याद्विजयोऽधिकशेषके ॥ ८ ॥

अन्वयः—दशतिघासकालारि, वर्गाष्टकांका, नाम्नः, तद्युतौ, सभाजितायाम्, अधिकशेषके, विजयः स्यात् ।

विजया—द ८, श ५, ति ६, घा ४, स ७, का १, ला ३, रि २ एते वर्णाः साङ्काः अष्टसु कोष्ठकेषु स्थाप्यास्तदधः क्रमेण वर्गाष्टका स्थाप्याः यथा दकारस्य अधः प्रथमकोष्टके अकाराद्याः षोडशस्वराः (अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः ऋ ॠ ऌ ॡ) ततः शकारस्याधः कवर्गः (क ख ग घ ङ), तिकारस्याधः चवर्गः (च छ ज झ ञ), एवम् घाकारस्याधः टवर्गः (ट ठ ड ढ ण), सकाराधः तवर्गः (त थ द ध न), काकाराधः पवर्गः (प फ ब भ म), लाकारस्याधः यवर्गः (य र ल व) तथा च रिकाराधः शवर्गः (श ष स ह) इत्येतान् वर्णान् अष्टसु कोष्ठेषु संस्थाप्य वादी-प्रतिवादी राज्ञयोर्नाम्नोः वर्णानां स्वराणां च अङ्क-योगः स ७ भक्ते सत्यधिकशेषके जयो वाच्यः । अर्थात् यस्य नाम्नि अधिकाङ्क-शेषस्तिष्ठति तस्य विजयः ।

भाषा—४८ कोष्टक का एक चक्र बनावें जो सात आड़ी और ९ खड़ी रेखाओं के द्वारा सम्पन्न होगा । इसमें ऊपर के आठ कोष्ठकों में क्रमशः तिर्यक् क्रम से द ८, श ५, ति ६, घा ४, स ७, का १, ला ३, रि २ को लिखे । तदनन्तर उर्ध्वाधर क्रम से अ आ इ ई, उ ऊ ऋ ॠ, ऌ ॡ ए ऐ, ओ औ अं, अः द के नीचे तथा (क ख ग घ ङ) श के नीचे, (च छ ज झ ञ) ति के नीचे, (ट ठ ड ढ ण) घा के नीचे, (त थ द ध न) स के नीचे, (प फ ब भ म), का के नीचे, (य र ल व ०) ला के नीचे तथा (श ष स ह) रि के नीचे लिखने से कोष्टक बन जाता है । इसके आधार पर वादी-प्रतिवादी जनों के नाम के स्वर तथा व्यञ्जन वर्णों से प्राप्त अंकों का योग कर उसमें ७ का भाग देने पर जिसका शेष अधिक रहे उसी की जीत होती है ।

उदाहरण—राम और रावण के अंक योग क्रमशः (र ३ + आ ८ + म १ + अ ८) = २० तथा (र ३ + आ ८ + व ३ + अ ८ + ण ४ + अ ८) = ३४ में ७ का भाग देने से शेष ६ दोनों में बराबर है अतः परस्पर साम्यता आती है।

तृतीय जय-पराजय चक्रम्

द ८	शं ५	ति ७	घा ४	स ७	का १	ला ३	रि २
अ आ इ ई	क	च	ट	त	प	य	श
उ ऊ ऋ ॠ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष
ऌ ॡ ए ऐ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
ओ औ अं	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
अः	ङ	ञ	ण	न	म	०	०

॥ समरसारे जय-पराजयचिन्ताप्रकरणं प्रथमः ॥

कुल-अकुल कुलाकुलगणमाह—

मूलार्द्राभिजिदम्बुपोडु दशमी षष्ठी द्वितीया बुधो
राज्ञोः सन्धिकरः कुलाकुलगणः स्थास्नोर्जयार्थं कुलः।
मासाख्यास्थितभानि शेष तिथयो युग्मा कुजो भार्गवः
संघोन्योऽकुलसंज्ञको विजयते तस्मिन्प्रयातो ध्रुवम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—मूलार्द्राभिजिदम्बुपोडु, दशमी, षष्ठी, द्वितीया बुधो, कुलाकुलगणः, राज्ञोः सन्धिकरः। मासाख्यास्थितभानि, शेष तिथयो युग्माः, कुजो भार्गवः कुलः (कुलसंज्ञकः) स्थास्नोर्जयार्थं। संघोऽन्योऽकुलसंज्ञको तस्मिन्प्रयातो ध्रुवम् विजयते।

विजया—मूलम्, आर्द्रा, अभिजित्, अंबुपः=तोयपः, शतभिषा इत्यर्थः एतानि उडूनि नक्षत्राणि षष्ठी, द्वितीया, दशमी एताः तिथयः, बुधवासरश्च कुलाकुलगण संज्ञकः, अयं राज्ञो सन्धिकरः प्रीतिकरः स्यादित्यर्थः। मासाख्यास्थितभानि—चैत्रादि द्वादशमासानां आख्या नामभिस्थितानि, भानि = नक्षत्राणि यथा—चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्षः, पुष्यः, मघा,

पूर्वाफाल्गुनी, एतानि च नक्षत्राणि मासनाम्ना प्रसिद्धाः। शेष युग्माः चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी तिथयः कुजः भौमवारः भार्गवः शुक्रवासरः कुलगण-संज्ञकः। अयं स्थास्नोः स्थायिनः जयार्थं भवति। अन्यः शेष तिथि-वासर-नक्षत्र समूहः अकुलगणः यथा—प्रतिपद, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी, पूर्णिमा, अमा च एताः तिथयः। रवि-चन्द्र-गुरु-शनयः वाराः। भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी च अकुलगणः। अस्मिन् गणे प्रयातः यायी विजयं प्राप्नोति।

कुल-अकुल कुलाकुलगणचक्रम्

गणनाम	नक्षत्राणि	तिथयः	वारः	फलम्
कुलाकुलगणः	मूल, आर्द्रा, अभिजित, शतभिषा,	२,१०,६	बुधः	सन्धिः
कुलगणः	चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा श्रवण, पू०भा०, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पू० फाल्गुनी	४, ८ १२, १४	मङ्ग. शुक्र	स्थायि-जयः
अकुलगणः	भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, उ.षा, धनिष्ठा, उ.भा. रेवती।	१, ३, ५ ७, ९, ११ १३, १५, ३०	सूर्य चन्द्र गुरु, शनि	यायि-जयः

भाषा—कुल-अकुल और कुलाकुल इन तीन गणों में विभक्तकर जय-विजय आदि का विवेचन आचार्य ने किया है। यथा—मूल-आर्द्रा अभिजित तथा शतभिषा नक्षत्र, २, ६, १० तिथियाँ और बुधवार यह कुलाकुलगणसंज्ञक हैं। इसमें युद्ध या विवाद तथा प्रतियोगिता आदि में सन्धि होती है। चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र, ४, ८, १२, १४ तिथियाँ तथा मंगल और शुक्रवार कुलगण-संज्ञक हैं। इनमें युद्धादि आरम्भ हो तो स्थायि का जय होता है। तथा भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्र, १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, ३०

तिथियाँ तथा सूर्य, चन्द्र, गुरु और शनिवार यह अकुलगणसंज्ञक हैं। इनमें युद्धादि के होने पर यायि की जय होती है। चक्र के द्वारा स्पष्टीकरण होगा ॥ ९ ॥

अथ स्वरशिरोमणि स्वरवर्णमाह—

पञ्चाणेङ्स्वराः कछडधभवमुखेस्वङ्णञव्यञ्जनेषु-
स्युर्नन्दादेस्तिथेस्ते तिथिकपिलवतोप्यन्तरा भोगभाजः।
नाम्नो बालः कुमारो युवसजरमृतास्त्वादिवर्णात्स्वरास्ते
सिद्ध्युत्कर्षो युवान्तोऽपचय इतरयोर्युद्धयतां द्विण्मृताचि ॥ १० ॥

अन्वयः—क छ ड ध भ व मुखेष्वङ् णञव्यञ्जनेषु अण् एङ् पञ्च स्वराः नन्दादेस्तिथेः स्युः ते तिथिकपिलवतोप्यन्तरा भोगभाजः। नाम्नः वर्णात्स्वराः ते बालः कुमारो युवस जरमृतास्त्वादि युवान्तो सिद्ध्युत्कर्षो इतरयोः अपचय द्विण्मृताचि युद्धयताम्।

विजया—क छ ड घ भ व मुखेषु, अ=अतिरिक्तेषु रहितेषु ङ ण ञ व्यञ्जनेषु। अण् (अ इ उ ण्) एङ् (ए ओ ङ्) पञ्चस्वराः अ इ उ ए ओ इत्यादयः लेख्याः। यथा—अकारस्याधः क छ ड ध भवाः वर्णाः। इकारस्याधः ख-ज-ढ-न-म-श वर्णाः। उकारस्याधः ग-झ-त-प-य-ष वर्णाः। एकारस्याधः घ-ट-थ-फ-र-स वर्णाः। ओकारस्याधः च-ठ-द-ब-ल-ह वर्णाः लेख्याः। तस्याधः क्रमेण नन्दादेस्तिथेः (च) स्युः। ते=स्वराः। नन्दादितिथेः स्युः इत्यर्थः। यथा—अकारस्याधः नन्दा (१।६।११)। इकारस्याधः भद्रा (२।७।१२)। उकारस्याधः जया (३।८।१३)। एकारस्याधः रिक्ता (४।९।१४)। ओकारस्याधः पूर्णा (५।१०।१५) स्थाप्याः। तिथिकपिलवतः—तिथीनां कपिलवः तिथिकपिलवः तिथीनामेकादशांशः तदन्तराः अपि एते पञ्चस्वराः भोगभाजः भवन्ति। अनेन एकैकस्यां तिथावपि एकैक स्वरभोगः घटि ५ पल २७ मितम्।

नाम्न इति। वादी प्रतिवादी नाम्नोर्य आद्योवर्णस्तत्स्वामी य अकारादि स्वरास्ते क्रमेण बालः, कुमारः, युवस्, जरा, मृत इत्यत्र आदि बालः युवान्तो युवापर्यन्तं (बालः कुमारः युवस्) सिद्धिः सिद्धिदायक उत्कर्षश्च भवेयुः। इतरयोः वृद्धमृतयोः सिद्धेरपचय अपकर्षः इति। शत्रोः मृतस्वरकाले युद्धं करणीय इति।

भाषा—अ इ उ ए ओ इन पाँच स्वरों के ऊपर क्रमशः बाल, कुमार, युवा,

वृद्ध और मृत स्वरों को लिखना चाहिए तथा अ इ उ ए ओ स्वर वर्णों के नीचे ङ ण ल इन व्यञ्जन वर्णों को छोड़ कर शेष क छ ड ध भ व। ख ज ढ न म श। ग झ त प य ज घ ट थ फ र स। च ठ द ब ल ह। इन व्यञ्जन वर्णों को लिखना चाहिए तथा इनके नीचे क्रमशः नन्दा (१।६।११) भद्रा (२।७।१२) जया (३।८।१३)। रिक्ता (४।९।१४)। और पूर्णा (५।१०।१५) तिथियों को लिखना चाहिए। इस तरह हमारा वर्णस्वरचक्र बनेगा। चक्र बन जाने के बाद वादी प्रतिवादी योद्धाओं के नामों में सम्मिलित स्वर एवं व्यञ्जन वर्णों से उत्पन्न बाल कुमारादि का ज्ञान कर शुभाशुभ फल कहना चाहिए।

बाल से युवा तक क्रमशः उत्कर्ष और शेष में क्रमशः अपकर्ष समझना चाहिए।

वर्णस्वरचक्रम्

बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ण	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
१।६।११	२।७।११	३।८।१३	४।९।१४	५।१०।१५

नोट—अ इ उ ए और ओ इन पांच स्वरों की सर्वत्र मान्यता है। अतः इन्हीं के द्वारा अनेक शुभाशुभ प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है। अपनी कार्य-सिद्धि के लिए यह ध्यान रहे कि जो कार्य जिस देव तत्व शक्ति गन्ध आदि जिस स्वरादि का हो उसी स्वर के उदय काल में उनको करना चाहिए। ब्रह्मा का अ। विष्णु का इ। रुद्र का उ। सूर्य का ए। चन्द्र का ओ। इसी प्रकार अ में इच्छा, इ में ज्ञान, उ में प्रभा, ए में श्रद्धा और ओ में मेधा शक्ति बलवती होती

है। पुनः अ में चौकोर, इ में अर्द्ध, उ में त्रिकोण, ए में षट्कोण और ओ में वर्तुलाकार चक्र में पूजन करें। इसी प्रकार क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाशगत प्रश्न किया जाता है। तथा क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द विषयक प्रश्न कहे जाते हैं।

स्फुटवर्णस्वरचक्रम्

	स्वर				
वर्ण	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
क	अ	इ	उ	ए	ओ
ख	इ	उ	ए	ओ	अ
ग	उ	ए	ओ	अ	इ
घ	ए	ओ	अ	इ	उ
च	ओ	अ	इ	उ	ए
छ	अ	इ	उ	ए	ओ
ज	इ	उ	ए	ओ	अ
झ	उ	ए	ओ	अ	इ
ट	ए	ओ	अ	इ	उ
ठ	ओ	अ	इ	उ	ए
ड	अ	इ	उ	ए	ओ
ढ	इ	उ	ए	ओ	अ
त	उ	ए	ओ	अ	इ
थ	ए	ओ	अ	इ	उ
द	ओ	अ	इ	उ	ए

	स्वर				
वर्ण	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
ध	अ	इ	उ	ए	ओ
न	इ	उ	ए	ओ	अ
प	उ	ए	ओ	अ	इ
फ	ए	ओ	अ	इ	उ
ब	आ	अ	इ	उ	ए
भ	अ	इ	उ	ए	ओ
म	इ	उ	ए	ओ	अ
य	उ	ए	ओ	अ	इ
र	ए	ओ	अ	इ	उ
ल	ओ	अ	इ	उ	ए
व	अ	इ	उ	ए	ओ
श	इ	उ	ए	ओ	अ
ष	उ	ए	ओ	अ	इ
स	ए	ओ	अ	इ	उ
ह	ओ	अ	इ	उ	ए

इस चक्र से सभी वर्णों के बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृतस्वर पृथक्-पृथक् स्पष्ट जाने जा सकते हैं।

अकारादि स्वराणां वारग्रहराशिनवांशनक्षत्राणां उदयं चाह—

भोमेनयोज्ञशशिनाश्च गुराभृंगोस्ते क्षेत्रे शनेरुदयिनाऽथ नवांशकेऽजात् ।
भारे करे तु परतोत्तिमभादिसप्तस्वादित्यतस्त्वि उमुखाः अपि पञ्चकेषु ।११।

अन्वयः—भौमेनयोः, ज्ञ शशिनः, च गुरोर्भृगोः शनेः ते क्षेत्रे, रुदयिनो अथ अजात् भारे करे परतोत्तिमभादि तु नवांशके स्वादित्यतस्त्वि पञ्चकेषु उ मुखा भवन्ति ।

विजया—भौमश्च इनश्च तयोः भौमेनयोः=भौम भास्करयोः अकार स्वरः ज्ञ शशिनः बुधचन्द्रयोः इकार स्वरः । गुरोः उकार स्वरः, भृगोः एकार स्वरः । शनेः ओकार स्वरः । इति वारस्वरस्य ग्रहस्वरस्य वा ज्ञानं प्रोक्तं । एवम् भौमेनयोः क्षेत्रे मेष वृश्चिक सिंहेषु अकारः । ज्ञ शशिनः क्षेत्रे मिथुन कन्या कर्केषु इकारः । गुरोः क्षेत्रे धनुमीनयोः उकारः । भृगोः शुक्रस्य क्षेत्रे तुला वृषयोः एकारः तथा च शनेः मन्दस्य क्षेत्रे मकरकुम्भयोः ओकारः । इति राशि स्वरस्य ज्ञानं संजातम् । एवम् अजात् मेषान् मीनान्तं यावत् १०८ नवमांशास्तत्र तावत् प्रथमं भारे चतुर्विंशतिः नवांशानां अकारः । परतः करे एकविंशति नवमांश क्रमेण इकारस्य, उकारस्य, एकारस्य तथा ओकारस्य च नवांशाः भवन्ति । अनेन सम्पन्नं नवांशस्वरज्ञानम् । अथाग्रे नक्षत्रस्वराः प्रोच्यन्ते । तत्रान्तिमभादि = रेवत्यादि सप्तसु अकार स्वरः आदित्यतः पुनर्वसुतः पञ्चकेषु क्रमेण इ उ मुखा अपि स्वराः भवन्ति ।

भाषा- मंगल, सूर्य वार और ग्रह का अकार स्वर, बुध, चन्द्रमा का इकार स्वर, गुरु का उकार स्वर, शुक्र का एकार स्वर, और शनि का ओकार स्वर वार और ग्रह के अनुसार हुआ, राशि के अनुसार मेष वृश्चिक सिंह का अकार स्वर, कन्या मिथुन और कर्क का इकार स्वर, धनु और मीन का उकार स्वर, वृष और तुला का एकार स्वर, तथा मकर और कुम्भ का ओकार स्वर होता है । नवांश के अनुसार एक राशि में नौ भाग होते हैं, तथा बारह राशियों में कुल १०८ नवांश होता है जिसमें प्रथम २४ नवमांश अर्थात् मेष का नौ नवमांश, वृष का नव नवमांश और मिथुन का ६ नवमांश इन कुल २४ नवमांशों का अकार स्वर तथा शेष इक्कीस-इक्कीस नवमांशों का क्रमशः इकार स्वर, उकार स्वर, एकार स्वर और ओकार स्वर होता है । नक्षत्र के अनुसार रेवती से आर्द्रा तक ७

नक्षत्रों का अकार स्वर, पुनर्वसु से पूर्वाफाल्गुनी तक ५ नक्षत्रों का इकार स्वर, उत्तरा फाल्गुनी से विशाखा तक ५ नक्षत्रों का उकार स्वर, अनुराधा से उत्तराषाढ़ा तक ५ नक्षत्रों का एकार स्वर और श्रवण से उत्तराभाद्रपदा तक ५ नक्षत्रों का ओकार स्वर होता है। स्पष्ट ज्ञान के लिए चक्र देखें—

ग्रहराशिनवांशनक्षत्राणां स्वरचक्रम्					
स्वराः	अ	इ	उ	ए	ओ
वाराः (ग्रहाः)	भौम, सूर्य	बुध, चन्द्र	गुरु	शुक्र	शनि
राशयः	मेष, वृश्चि० सिंह	कन्या, मिथु० कर्क	धनुर्मीन	वृष, तुला	मक०, कु०
नवांशाः	मे ९ वृ. ९ मिथुन ६	मि.३ कर्क९ सिंह ९	क० ९ तु.९ वृश्चिक ३	वृ.६, ध.९ मकर ६	म ३ कु.९ मीन ९
नक्षत्राणि	रेवत्यादि ७	पुनर्वस्वादि ५	उ० फा० दि ५	अनुराधादि ५	श्रवणादि ५

उदाहरण—देवनन्दन का ग्रह स्वर जानने के लिए दे दो चा ची रेवती के अनुसार रेवती नक्षत्र मीन राशि और मीन का स्वामी वृहस्पति है। अतः इसके अनुसार देवनन्दन का ग्रह स्वर उकार, राशि स्वर उकार, नवांश स्वर ओकार और नक्षत्र स्वर अकार सिद्ध हुआ। स्पष्टता के लिए स्वर चक्र देखिए।

द्वादशाब्दादि पञ्चस्वराणां ज्ञानमाह—

[1]रूपाब्देष्वथ [2]हायनर्त्तुषु[3] च ते तत्काय भागान्तरा
भुक्त्यावाच्यऽपरेयने त्व इरिमी कृष्णान्त्ययोः पक्षयोः।
राधे भाद्रपदे सहस्य इरिषाषाढे नभस्युमंघौ
पौषे थैरपि शुक्र उर्ज्ज उदयौ माघान्त्ययोरोस्तथा ॥ १२ ॥

१. 'कादिनवाङ्का नवटादिरङ्का पादिश्शरा यादि भवन्ति चाष्टौ' इति नियमात्।

२. 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः १।४।२०।

३. 'मृगादिराशिद्वय भानुभोगः षट्कं ऋतूनां शिशिरोवसन्तः। ग्रीष्मश्च वर्षाः शरदश्च तद्वद्धेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः॥' चान्द्रमानेन चैत्रादि द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिरेति।

अन्वयः—अथ ते रूपाब्देषु हायनऋतुषु च (उदयीभवन्ति)। अवाचि अपरे अयने तु कृष्णान्त्ययो पक्षयोः (च) अ इ इमौ (उदयी भवतः) तथा राधे भाद्रपदे सहसि अ, इषे आषाढ़े नभसि इ, मघौ पोषे उ अथ (अनन्तरम्) अपि च शुक्र उर्ज्जे ए, माघान्तयोः ओ (उदयी भवन्ति) तत् कायभागान्तरा भुक्तिः (भवन्ति)।

विजया— (अनेन श्लोकेन द्वादशाब्दिक, वार्षिक, अयन, ऋतु, मास, पक्ष स्वराः सान्तरोदयाः कथिताः) अथ अनन्तरम्, ते पञ्च अ इ उ ए ओ स्वराः, रूपाब्देषु रूपाब्दाः द्वादशाब्दाः तेषु रूपाब्देषु, प्रभवादिद्वादशसु वर्षेषु अकार उदयी भवति। एवम् प्रमाथ्यादिषु इकारः। खरादिद्वादशवत्सरेषु उकारः। शोभनादि द्वादशवर्षेषु एकारः, राक्षसादि द्वादश वर्षेषु च ओकारः स्वामी भवति। अनेन बालादिः ज्ञातव्यः। यथा जन्मसम्वत्सरस्य यः स्वामी भवति तं स्वरमारभ्य द्वादशाब्दिक स्वरः बालादिरिति ज्ञातव्यः। हायनं वार्षिकस्वरम् प्रभवादिवर्षेषु अकाराद्याः स्वरा उदयं प्राप्नुवन्ति। यथा प्रभववर्षे अकारः स्वामी, विभववर्षे इकारः स्वामी, शुक्ल वर्षे उकारः स्वामी, प्रमोद वर्षे एकारः स्वामी, प्रजापतिवर्षे ओकारः स्वामी। एवं पञ्चसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनो भवन्ति। ऋतुषु च ऋतुस्वरमाह च वसन्तर्तुमारभ्य द्विसप्तति विनात्मकमेकैकस्य ऋतोरुदयः स्यात्। यथा—वसन्तर्त्तोः षष्टि दिनानि, ग्रीष्मर्त्तोः द्वादशदिनानि यावदकारस्वरस्योदयः। ग्रीष्मर्तोरष्टचत्वारिंशद्दिनानि, वर्षर्त्तोश्चतुर्विंशतिदिनानि यावदिकारस्योदयः। वर्षर्तोः षट्त्रिंशद्दिनानि, शरदृतोः षट्त्रिंशद्दिनानि यावदुकारस्योदयः। शरदृतोश्चतुर्विंशति दिनानि, हेमन्तर्तोः चत्वारिंशद्दिनानि यावदेकारस्योदयः। हेमन्तस्य द्वादशदिनानि सहितानि शिशिरर्तोः षष्टि दिनानि यावदोकारस्योदयः। एवम् अयनस्वरमाह—अवाचि दक्षिणायने अपरे उत्तरायणे अयने तथा कृष्णा कृष्णपक्षस्य, अन्त्ययोः शुक्लपक्षस्य च अ इ इमौ स्वरौ क्रमेण उदयी भवतः तथा राधे वैशाखे, भाद्रपदे, सहसि मार्गशीर्षे अकारः स्वामी भवति। इषे आश्विने आषाढ़ेनभस्ये श्रावणे च इकारस्वरस्योदयं भवति। मघौ चैत्रे, पौषे च उकार उदयी भवति। अथानन्तरम् शुक्रे ज्येष्ठे, उर्ज्जे कार्तिके एकार उदयी भवति। माघः अन्त्यः फाल्गुनः तयोः माघान्त्ययोः ओकारस्वरस्य उदयं भवति। तत् तेषां द्वादशाब्दिक वार्षिकायन ऋतुमासपक्षस्वराणां कायभाग्रः एकादशांशाः एकादशभागाः अन्तरोदया भवन्ति।

यथा द्वादशाब्दिक स्वरस्य एको वर्षः एको मासः दिन द्वयम्, त्रयश्चत्वारिंशद्घटचः अर्ष्टात्रिशत्पलानि च अन्तरोदयः। एवम् वार्षिक स्वरस्य--एको मासः दिनद्वयं त्रयश्चत्वारिंशद्घटचः अष्टात्रिंशत्पलानि। ऋतुस्वरस्य--दिनानि षट् द्वात्रिंशद् घटचः त्रिचत्वारिंशत्पलानि। अयनस्वरस्य—षोडश दिनानि एकविंशतिघटचः एकोनपञ्चाशत्पलानि। पक्षस्वरस्य--एकं दिनम् एकविंशतिघटिकाः, एकोनपञ्चाश॰त्पलानि। मासस्वरस्य–दिनत्रयम्, त्रिचत्वारिंशत्घटचः, अष्टत्रिंशत्पलानि अन्तरोदया भवन्ति।

भाषा—इस श्लोक के द्वारा द्वादशाब्दिक, आब्दिक (वार्षिक) अयन, ऋतु मास और पक्षस्वरों को उनके अन्तरोदय भाग के साथ कहा गया है।

प्रभवादि बारह-बारह सम्वत्सरों में अ इ उ ए ओ यह क्रमशः स्वर होते हैं। जैसे:–प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता ईश्वर, बहुधान्य इन १२ सम्वत्सरों का द्वादशाब्दिकस्वर अकार होगा। इसीप्रकार प्रमाथ्यादि द्वादश सम्वत्सरों का इकार, खरादि द्वादश सम्वत्सरों का उकार, शोभनादि द्वादश वर्षों का एकार और राक्षसादि द्वादश वर्षों का ओकार स्वर स्वामी होता है। इसे चक्र द्वारा स्पष्ट समझें। द्वादशाब्दिक वर्षस्वर का अन्तरोदय १२ ÷ ११ करने से १ वर्ष १ मास २ दिन ४३ घटी ३८ पला होता है।

वार्षिक स्वर प्रभवादि साठ सम्वत्सरों का क्रमशः १२ आवृत्ति में होता है। यथा प्रभव का अकार। विभव का इकार। शुक्ल का उकार। प्रमोद का एकार और प्रजापति का ओकार स्वर होगा। इसे भी चक्र से स्पष्ट समझें तथा इसका एकादशांश अन्तरोदय १ मास २ दिन ४३ घटी ३८ पला होगा।

ऋतुस्वर लाने के लिए ३६० दिन के वर्ष मान में ५ का भाग देने पर ७२ दिन का एक स्वर होता है। इस प्रकार वसन्त ऋतु का ६० दिन, ग्रीष्म ऋतु का १२ दिन मिलाकर अकार स्वर। ग्रीष्म ऋतु का ४८ दिन और वर्षा ऋतुका २४ दिन मिला कर इकार स्वर। वर्षा ऋतु का ३६ दिन और शरद् ऋतु का ३६ दिन मिलाकर उकार स्वर। शरद ऋतु का २४ दिन और हेमन्त का ४८ दिन मिलाकर एकार स्वर और हेमन्त का १२ दिन तथा शिशिर ऋतु का ६० दिन मिलाकर ओकार स्वर होगा तथा इसका एकादशांश ६ दिन ३२ घटी ४३ पला अन्तरोदयमान होगा।

अयन स्वर केवल अकार इकार का होता है यथा दक्षिणायन का अकार और उत्तरायण का इकार स्वर होगा तथा अन्तरोदयमान १६ दिन २१ घटी ४९ पला होगा।

पक्षस्वर में भी अयनस्वर की भाँति अकार और इकार स्वर क्रमशः कृष्ण और शुक्ल पक्ष का होगा तथा इसका अन्तरोदयमान १ दिन २१ घटी ४९ पल होगा।

मासस्वर—वैशाख, भाद्रपद और मार्गशीर्ष (अगहन) का अकार स्वर। आश्विन (क्वार), आषाढ़ और श्रावण इन तीन महीनों का इकार स्वर। चैत्र और पौष का उकार स्वर, ज्येष्ठ और कार्तिक का एकार स्वर तथा माघ और फाल्गुन मास का ओकार स्वर होगा तथा ग्यारह से भाग देने पर अन्तरोदयमान ज्ञात होगा ॥ १२ ॥

विशेष—'श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु। तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥' के अनुसार श्रौतस्मार्तकर्म चान्द्रऋतु में तथा अन्य सौर ऋतु में करना चाहिए। वर्ष का मान यहाँ ३६० दिन का 'वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्' के आधार पर दिया है। चक्र पेज नं० १९ पर देखें।

मात्रास्वराण्याह—

मात्रा नाममुखार्णजैव तु तदज्मंत्रादिसिद्धौ[1] हलच्-
संख्यैक्यं तप संख्ययाऽक्षुभि यशोः काद्येमिजीवाष्णुभे[2]।
पिण्डाज्गात्रिक वर्णिकैक्यमहृते शेषे चमूसत्कृती-
मात्राणग्रहपिण्डजीवभगृहाजैक्यान्म हृद्यौगिकः ॥ १३ ॥

अन्वयः—नाममुखार्णजैव तु मात्रा तदच् मन्त्रादि सिद्धौ। हलच् संख्यैक्यम् अक्षु तप संख्यया यशोः भि काद्ये मि जीवाष्णुभे। मात्रिक वर्णिकैक्यं महृते शेषे पिण्डाज् चमूसत्कृती। मात्राणग्रहपिण्डजीव भगृहाजैक्यान् महृत् यौगिकः स्वरो भवेत्।

विजया—मात्रास्वराण्याह—अनेन मात्रास्वर, जीवस्वर, योगस्वर, पिण्ड-

---

१. 'साधनं मन्त्रयन्त्रस्य तन्त्रयोगं च सर्वदा। अधोमुखानि कार्याणि मात्रास्वरबले कुरु।' इति

२. 'जीवाञ्छुभे' इति पाठभेदः।

द्वादशाब्दिकस्वरचक्रम्				
अ	इ	उ	ए	ओ
प्रभव	प्रमाद	खर	शोभन	राक्षस
विभव	विक्रम	नंदन	क्रोधी	नल
शुक्ल	वृषभ	विजय	विश्वा	ंिगल
प्रमोद	चित्र	जय	पराभव	काल
प्रजा.	सुभा	मन्मथ	प्लवंग	सिद्धा
अंगिरा	तारण	दुर्मुख	कील	रौद्री
श्रीमुख	पार्थिव	हेमल	सौम्य	दुर्मति
भाव	व्यय	विलंब	साधा	दुंदुभि
युवा	सर्वजि	विकास	विरोध	रुधिर
धाता	सर्ववा	शर्वरी	परिध	रक्ता
ईश्वर	विरोधी	प्लव	प्रमाथी	क्रोधन
बहुधा	विक्रम	शुभकृत्	आनंद	क्षय
१२	१२	१२	१२	१२

वार्षिकस्वरचक्रम्				
अ	इ	उ	ए	ओ
प्र.	वि.	शु.	प्र.	प्र.
अं.	श्री	भा.	यु.	धा.
इ.	बहु.	प्र.	वि.	वृ.
चि.	सु.	ता.	पा.	व्य.
स.	स.	वि.	बि.	ख.
नं.	वि.	ज.	म.	दुं.
हे.	वि.	वि.	श.	प्ल.
शु.	शो.	क्रो.	वि.	प.
प्ल.	की.	सौ.	सा.	वि.
प.	प्र.	आ.	रा.	न.
पि.	का.	सि.	रौ.	दुर्म.
दु.	रु.	र.	क्रोध	क्षय
१२	१२	१२	१७	१२

अयनस्वरम्	
अ	इ
दक्षिणायने	उत्तरायणे

ऋतुस्वरचक्रम्	
अ	वसन्तर्तौ: ६० दिनानि, ग्रीष्मर्तौ: १२ यावत्
इ	ग्रीष्मर्तौ: ४८ दिनानि, वसन्तर्तौ: २४ यावत्
उ	वर्षर्तौ: ३६ दिनानि, शरद्तौ: ३६ यावत्
ए	शरद्तौ: २४ दिनानि, हेमन्तस्य ४८ यावत्
ओ	हेमन्तस्य १२ दिनानि, शिशिर्तौ: ६० यावत्

पक्षस्वरचक्रम्	
अ	इ
कृष्णे	शुक्ले

मासस्वरचक्रम्					
स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
मास	भा. मा. चै.	श्रा. श्रा. श्रा.	चै. पौ.	ज्ये. का.	मा. फा.

स्वरान् कथयति । नाममुखार्णजैव तु नाममुखे नामादौ यः अर्णो वर्णस्तज्जाता एतादृशी या मात्रा तदच् मात्रास्वर इत्यर्थः । सः मात्रास्वरः मन्त्रादिसिद्धौ स्यात् अर्थात्मन्त्रादिसाधनं मात्रास्वरबले सति कर्त्तव्यम् । उक्तञ्च—

साधनं मन्त्रयन्त्रस्य मन्त्रयोगं च सर्वदा ।
[1]अधोमुखानि कार्याणि मात्रास्वरबले कुरु ॥ स्वरोदये ।

जीवस्वरानयनार्थम्—नाम्नः हल् अच् संख्यैक्यं कर्त्तव्यम् । अक्षु स्वरेषु तपः षोडश संख्यया (अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः ऋ ॠ ऌ ॡ) ग्राह्याः । यशो यवर्गशवर्गयोः भि चतुस्संख्या ग्राह्याः । काद्ये कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्गेषु मि पञ्चसंख्या ग्राह्याः । अर्थात् अनेन क्रमेण स्वरव्यञ्जनानां संख्यायोगं जीवस्वरो भवति । स च शुभे मङ्गलकृत्ये ग्राह्यः । संख्या पञ्चाधिका चेत् पञ्चभिर्भागो देयः । शेषे स्वरो ग्राह्यः । शून्यशेषे तु ओकारो ग्राह्यः । फलञ्चोक्तं स्वरोदये—

खानपानादिकं सर्व बस्त्रालङ्कारभूशणम् ।
विद्यारम्भं विवाहं च कुर्याज्जीवस्वरोदये ॥

मात्रिको मात्रास्वरः, वर्णिको वर्णस्वरः, तत्संख्ययोरैक्यं म ५ हृते शेषे पिण्डाच् पिण्डस्वरः भवति ॥ स च चमूसत्कृतौ सेनायाः सत्कारे सज्जीकरणे वा ग्राह्यः । उक्तञ्च—

शत्रूणां देशभङ्गं च कोटयुद्धं भ वेष्टनम् ।
सेनाध्यक्षस्तथा मन्त्री कर्त्तव्यः पिण्डकोदये ॥ स्वरोदये

युवास्वरकाले सेनाधिपत्यं दातव्यमिति । यौगिक स्वरम्—तत्र मात्रास्वर, वर्णस्वर, ग्रहस्वर, पिण्डस्वर, जीवस्वर, भ जन्मनक्षत्रं तदधिपस्वर, गृहराशिस्तस्य च यः अच् एषां मात्रादि पञ्च विभक्ता शिष्टौ यौगिकस्वरो भवति ॥ 'योगेन साधयेद्योगं देहस्थं ज्ञानसम्भवम्' इति ॥ १२ ॥

---

१. भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखिकाः । तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः ॥'

तथा च मुहूर्त्तचिन्तामणौ—'मूलाहि मिश्रोग्रमधोमुखं भवेत्' एषु:—
'वापीकूलतडागादि खननं च तृणादिकम् । देवतागारखननं निधानखननं तथा ॥
गणितं ज्यौतिषारंभं खनीविलप्रवेशनम् । कुर्यादधोगतान्येव कार्याणि वृषभध्वज ॥'
ग० पुराण ।

भाषा—नामोच्चारण काल में नाम का जो आदि वर्ण उसकी जो मात्रा उसे मात्रा स्वर कहते हैं। और मन्त्रादि साधन में उसका उपयोग उत्तम होता है। स्वरों की संख्या १६ कवर्ग ५, चवर्ग ५, टवर्ग ५, तवर्ग ५, पवर्ग ५, यवर्ग ४, शवर्ग ४, इस प्रकार से नाम के स्वर-व्यञ्जनों की संख्या के योग में ५ का भाग देने पर शेष जीवस्वर होता है। इसका उपयोग शुभ कार्यों में होता है। मात्रा-स्वर और वर्णस्वर की संख्या के योग में ५ का भाग देने पर शेष पिण्डस्वर होता है जो सेना के स्वागत, सजावट आदि के लिए शुभ होता है तथा मात्रास्वर, पिण्डस्वर, वर्णस्वर, ग्रहस्वर, जीवस्वर, नक्षत्रस्वर तथा राशिस्वरों की संख्या के योग में ५ का भाग देने पर शेष योग स्वर या यौगिक स्वर आता है। इसमें योगसाधन तथा शरीरसाधन उत्तम होता है।

उदाहरण—मात्रास्वर–राम के आदि वर्ण रकार में आ की मात्रा होने से राम का मात्रास्वर आकार होगा। जीवस्वर—र्+आ+म्+अ=२+२+५+१= १०÷५=शेष शून्य अर्थात् ५ यह राम का जीवस्वर ओकार हुआ। पिण्डस्वर–वर्णस्वर एकार ४+मात्रास्वर १=५÷५=० या ५ होने से राम का पिण्ड-स्वर ओकार हुआ। यौगिकस्वर–राम का मात्रास्वर १+वर्णस्वर ४+ग्रहस्वर ४+पिण्डस्वर ५+जीवस्वर ५+नक्षत्रस्वर ३+राशिस्वर ४=२६÷५=१ शेष बचा अतः राम का यौगिकस्वर अकार होगा ॥ १३ ॥

योगस्वरवर्णस्वरयोर्विशेषफलमाह—

> योगाचा योगभजनं वर्णाचा सर्वमाहवेत् ।
> विशेषतश्च संग्रामं सहि सर्वस्वराग्रणीः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—योगाचा योगस्वरेण योगवले सति योगभजनं योगं च भजनं च योगभजनं योगसाधनमित्यर्थः। वर्णाचा वर्णस्वरेण सर्वमाहवेत्। सर्वकर्म आहवेत् कुर्यादिति भावः। विशेषतः संग्रामादिकं च कुर्यात्। यतः सर्वस्वराणां मध्ये अग्रणी प्रधानः तस्मात् कारणात् यदा वर्णस्वरो युवा भवति तदा सर्वकार्यसाधनावसरं ज्ञात्वा सर्वं पूर्वोक्तं कार्यं अतीव शुभतरः।

भाषा—योगस्वर में योगादि का साधन करना चाहिए तथा वर्णस्वर में सभी कार्यों का साधन विशेष कर युद्धादि कार्य को करना चाहिए। क्योंकि यह वर्णस्वर सभी स्वरों में श्रेष्ठ माना गया है ॥ १४ ॥

युद्धे भटादीनां जय-पराजय-साम्यज्ञानमाह—

तेषामचां लयभरायमितिर्हलांच नाम्नोरलां तु मिलिता महृता पृथक्सा।
हीना मृतिं विजयमाह तथाधिका सा तुल्यासमं च समरं यदि वापिसंधिम्॥

अन्वयः—तेषां अचां लयभरायम् इति हलां च (पञ्चसु कोष्ठकेषु स्थाप्या) नाम्नः अलां तु मिलिता महृता सा पृथक् (पृथक् स्थाप्या)। हीना मृतिं, तथा अधिका विजयमाह यदि सा तुल्या (तदा) समरं समं अपि वा सन्धिम् भवेत्।

विजया—तेषां पूर्वोक्तानां अचां अ इ उ ए ओ इत्येतेषां पञ्चानां स्वराणां ल ३, य १, भ ४, रा २, य १ इति हलां व्यञ्जनानां च पञ्चसु कोष्ठकेषु स्थापनं कार्यम्। तदनन्तरम् नाम्नः प्रतिवादी वादिजनानां नाम्नोर्ये स्वरव्यञ्जनवर्णाः तेषां सम्बन्धिनी या संख्या (ल य भ रा य इत्यनेनोक्ता) सा मिलिता पृथक् पञ्चभक्ता सति शेषरूपेण स्थाप्या। सा संख्या चेत् इतरापेक्षया हीना तदा तन्मृतिम् मरण-माह। अधिका चेत्सा तदा विजयमाह। सा संख्या तुल्या चेत् तदा समरं तुल्यं अपि वा द्वयोराशोः सन्धि स्यादिति।

भाषा—पूर्वोक्त रीति के अनुसार ६ उर्ध्वाधर तथा ५ तिर्यक् रेखाओं के द्वारा २० कोष्ठक का एक चक्र बना कर ऊपर ल ३, य १, भ ४, रा २, य १ उसके नीचे के ५ कोष्ठकों में अ इ उ ए ओ इन स्वरों को तथा उसके नीचे के कोष्ठकों में व्यञ्जन वर्णों को ङ ञ ण न के अतिरिक्त ह पर्यन्त लिखने से कोष्ठक बन जायेगा। उस कोष्ठक के आधार पर वादि प्रतिवादी राजाओं या व्यक्तियों के नाम के अन्दर आने वाले स्वर तथा व्यञ्जन वर्णों से उत्पन्न अंकों का योग कर उसमें ५ का भाग दे दें। शेष संख्या के अनुसार जिसकी संख्या न्यून हो उसकी मृत्यु या हार, जिसकी अधिक होवे उसकी विजय तथा दोनों के समान होने पर बराबर हो या सन्धि होवे।

जय-पराजयचक्रम्				
ल ३	य १	भ ४	रा २	य १
अ	इ	उ	ए	ओ
क छ ड	ख ज ढ	ग झ त	घ ट थ	च ठ द
घ भ व	न म श	प य ष	फ र स	ब ल ह

उदाहरण—राम और रावण इन दो योद्धाओं में किस की जय होगी, पराजय होगी या सन्धि होगी इस प्रश्न में र् २ + आ ३+म् १ + अ ३ = ९ ÷ ५ = ४ तथा रावण के नाम के अनुसार र्२ + आ३ + व् ३+अ३+ण०+अ३=१४ ÷ ५=४ अर्थात् इस नियम के अनुसार युद्ध में दोनों की साम्यता होगी ।। १५ ।।

।। इति समरसारे स्वरभेदजयपराजयप्रकरणम् द्वितीयः ।।

बालकुमारादि स्वरवशाद्भूबलमाह—

पूर्वादि दिक्ष्वन्तरगाश्च तेऽचः सुखं जयेद्यूनि[1] जयस्तु घातात् ।
स्याद्याद्ययोर्नान्तिमयोः स्वशत्रुबलाबलाभ्यां भुवमाददीत ।। १६ ।।

अन्वयः—ते अचः पूर्वादिदिक्षु अन्तरगा च (इति मध्येऽपि) स्थाप्या । यूनिः सुखं जयेत् । आद्ययोः जयस्तु घातात् स्यात् । अन्तिमयोः न (जयोर्नास्ति) (अतः) स्वशत्रुबलाबलाभ्यां भुवम् आददीत ।

विजया—ते पूर्वोक्ता अचः अ इ उ ए ओ पूर्वादिदिक्षु पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्योत्तर-ईशानमध्य दिक्षु अन्तरगाः यथापूर्वं स्थाप्य आग्नेय दिक्त्याज्यः, पुनः दक्षिणे स्थाप्य नैऋत्यं त्याज्यम् । इत्थं पूर्वे अकारः, दक्षिणे इकारः, पश्चिमे उकारः, उत्तरे एकारः, मध्ये ओकारश्च लेख्यः । यस्य योद्घुः वर्णस्वरो युवा यस्यां दिशि भवति संग्रामे तस्यां दिशि तस्य जयः स्यात् । आद्ययोः बालकुमारयोः स्वरौ यद्दिशि तद्दिशि स्थितस्य योद्धुः घाताज्जयः । प्रथमं घातः तदनन्तरं जयः स्यादिति । अन्तिमयोः स्वरयोः वृद्धस्वर-मृतस्वरयोर्जयो न स्यात् । अतः स्वशत्रुबलाबलाभ्यां भुवम् आददीत् । यस्यां दिशि आत्मनः बलं शत्रोः अबलो भवति तां भूमिं च युद्धे आददीत । अनेन विधिना जयो भवति । अन्यथा पराजयः ।

भाषा—नव कोष्टक चक्र के अन्दर पूरव में अकार, दक्षिण में इकार, पश्चिम में उकार, उत्तर में एकार और मध्य में ओकार लिख कर चक्र बनावे । युवा-स्वर की जो दिशा हो उधर अवस्थित होकर युद्ध करने से सुगमता से विजय होती है । तथा बाल-कुमार की दिशा में घातपूर्वक विजय तथा वृद्ध-मृत्यु स्वरदिशा में

---

१. (स्वयुवमघोनाश्चेति सूत्रे कुलचन्द्रः) युवती, युवा इति शब्दरत्नावली ।।

अवस्थित होकर युद्ध करने से पराजय या मृत्यु होती है । अतः अपना बलकारक और शत्रु का निर्बलकारक जब स्वर रहे तो युद्ध करना जयप्रद होता है

दिशास्वरचक्रम्		
	पूर्वे अ	
उत्तरे ए	मध्ये ओ	दक्षिणे इ
	पश्चिमे उ	

उदाहरण—राम और रावण दोनों का ही एकार स्वर हैं जो इनका बाल-स्वर हुआ और इसकी दिशा उत्तर है । तथा बाल से तृतीय अकार इनका युवा स्वर होगा । जो पूरब में है । अतः पूरब दोनों की बलवती दिशा होगी । तथा दोनों तुल्यबलविरोधी होंगे ॥ १६ ॥

राशिस्वरमाह—

ऐशानीतः सितकुजशनिरविखगराशयः प्रतीचीन्दोः ।
गुरुगृहयोरक्ष उदग्दिशौ ज्ञगृहयोस्तु वायव्याम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—ऐशानीतः ईशान (पूर्वोत्तरदिग्मध्यभागः) कोणमारभ्य एते राशयो भवन्ति । अर्थात् ईशानकोणे सितस्य शुक्रस्य राशिः वृषस्तुला च बलिनौ भवतः । पूर्वस्यां कुजस्य मेषवृश्चिकौ बलिनौ भवतः । आग्नेय्यां शनेः मकर-कुम्भराशौ बलिनौ भवतः । दक्षिणे सूर्यस्य सिंहराशिः बली स्यात् । इन्दोः चन्द्रस्य कर्कटराशिः प्रतीचीदिक् बली स्यात् । गुरुगृहयोः रक्ष (नैऋत्य) उदक् उत्तरदिशौ क्रमशः धनुःमीनराशौ बलिनौ भवतः । यथा धनुषः निऋतिदिक् ज्ञातव्या । मीनराशेश्चोत्तरादिग् ज्ञेया । ज्ञगृहयो मिथुनकन्ययोः वायव्य दिग् ज्ञेया । एतासु दिक्षु एतेषां राशिनां वासः स्यादिति भावः ।

भाषा—ईशानकोण से आरम्भ करके शुक्र भौम शनि सूर्य की राशि बली होती है । अर्थात् ईशान कोण में वृष तुला । पूर्व में मेष वृश्चिक । अग्नि कोण में मकर कुम्भ और दक्षिण दिशा में सिंह राशि का बल अधिक होता है । इसी प्रकार पश्चिम में कर्क, नैऋत्य में धनु उत्तर में मीन और वायव्य कोण में मिथुन कन्या बलवान् होती है । इसे चक्र द्वारा स्पष्ट समझें ॥ १७ ॥

राशिस्वरचक्रम्		
ई० वृष तुला	पूर्व–मेष, वृश्चिक	आ०–मकर, कुम्भ
उत्तर मीन		दक्षिण सिंह
वा० मि० क०	पश्चिम–कर्क	नैर्ऋत्य–धनु

रविहतां (रविदग्ध) दिशामाह—

द्वितीययामार्द्धत एव यामे यामे तृतीयां च ततस्तृतीयाम् ।
अर्कः प्रतीचीप्रभृतिर्निहन्ति प्रागन्त्ययामार्धयुगेन याम्याम् ॥ १८ ॥

अन्वय:—अर्क: द्वितीय यामार्द्धत एव यामे यामे प्रतीची प्रभृति: तृतीयां च तत: तृतीयाम् निहन्ति । याम्याम् प्रागन्त्य यामार्धयुगेन निहन्ति ।

विजया—अर्क: सूर्य: दितीययामार्द्धत: एव यामे यामे प्रहरे प्रहरे कां दिश-मारभ्येतित्यपेक्षायां प्रतीचीं पूर्वां प्रभृतिरिति तृतीयां दिशं निहन्ति। याम्याम् दक्षिणां दिशं प्राग् अन्त्ययोर्य: प्रथम प्रहरस्य प्रथमार्द्ध: अन्तस्य चतुर्थप्रहरस्य च द्वितीया-र्द्धस्तयोर्युगं तेन प्रथम चतुर्थ यामयो प्रथमद्वितीयार्द्धयुग्मेनेति भाव: तां च निहन्ति । एवं रविदग्धा दिश: तत्काले शुभकर्मसु त्याज्या: ।

भाषा—दिन में चार प्रहर या याम होते हैं । एक प्रहर के आधे को प्रहरार्द्ध या यामार्द्ध कहते हैं । मध्यम मान से प्रहर ३ घण्टे का होता है । अत: प्रहरार्द्ध १ घण्टा ३० मिनट का हुआ । सूर्य दिन में प्रथम प्रहर के उत्तरार्द्ध (द्वितीय यामार्द्ध) से आरम्भकर पश्चिम दिशा से दक्षिण क्रम से एक-एक दिशाओं को छोड़ कर दिशा का वेध करता है। जैसे—२, ३ यामार्द्ध में पश्चिम । ४, ५ यामार्द्ध में उत्तर । ६, ७ यामार्द्ध में पूरब तथा १, ८ यामार्द्ध में दक्षिण दिशा में सूर्य का वेध होता है जो सभी शुभ कामों में, विशेष कर वाद, यात्रा एवं युद्ध में अवश्य त्याग देना चाहिए ॥ १८ ॥

रविहतदिक्चक्रम्		
ईशान	पूर्व ६-७	आग्नेय
उत्तर ४-५		दक्षिण १-८
वायव्य	पश्चिम २-३	नैऋत्य

चन्द्रहता विदिग्दिशस्तद्राशींश्चाह—

ईशाद्विदिशां चन्द्रो यामे यामे निहन्ति वृषकुम्भौ ।
मृगसिंहौ धन्विनमथ कन्या मिथुनौ क्रमेणैव ॥ १९ ॥

अन्वयः—चन्द्रः ईशात् विदिशां यामे यामे वृषकुम्भौ, मृगसिंहौ, धन्विनम् अथ कन्यामिथुनौ च क्रमेण एव निहन्ति ।

विजया—चन्द्रः ईशात् ईशानकोणतः ईशानकोणमारभ्येति भावः यामे यामे प्रहरे प्रहरे विदिशां कोणदिशामित्यर्थः यथा वृषकुम्भौ ऐशान्याम् । मृगसिंहौ आग्नेयां । धन्विनं नैऋत्यां । कन्यामिथुनौ वायव्यां इत्यनेन क्रमेण एव निहन्ति घातो करोति अतस्तां दिशं परित्यज्य यात्रा युद्धादिकं कर्त्तव्यमिति भावः ।

भाषा—चन्द्रमा ईशान कोण से आरम्भ कर प्रतिकोण दिशाओं में क्रमशः वृष-कुम्भ । सिंह-मकर । धनु और मिथुन कन्या में घात करता है । अतः इसका विचार कर यह राशि जिस कोंण में हो उस कोंण में स्थित होकर युद्धादि नहीं करना चाहिए ।

चन्द्रहतादिक्चक्रम्		
ई० २ । ११	पूर्व	आ० ५ । १०
उ०		द०
३ । ६ वा०	प०	९ नै०

उदाहरण—यथा—यदि चैत्र शुक्ल नवमी को कर्क (राशि) का चन्द्रमा है और महेन्द्र की सिंह राशि का घात अग्निकोण में होता है तो अग्निकोण में स्थित होकर महेन्द्र को युद्धादि नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसकी हार होगी ॥१९॥

गूढापराख्य केतुहतदिग्विदिश आह—

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च।
षष्ठीं षष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभां न रणे॥ २०॥

अन्वयः—सुगमम्।

विजया—गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अर्द्धप्रहरैः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ च षष्ठीं षष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत्। अतस्तन्मुखं (सन्मुखं) यात्रा शुभा न स्यात्। रणे संग्रामे चैतन्न शुभं। चक्रदर्शनात् सर्वं स्फुटं भवति।

भाषा—इस गूढ़चक्र के द्वारा वेध का ज्ञान करते हैं। दिन के ४ प्रहर अर्थात् ८ प्रहरार्ध तथा रात्रि के चार प्रहर अर्थात् ८ प्रहरार्ध होते हैं। अतः दिन रात्रि का योग रूप कुल १६ प्रहरार्धों की स्थापना चक्र में करें। अग्निकोण से प्रथम यामार्ध आरम्भ कर छठवीं छठवीं दिशा में स्थापित करें। यथा अग्निकोण में प्रथम यामार्ध। अग्निकोण से छठवीं दिशा उत्तर में द्वितीय यामार्ध। उत्तर से छठवीं दिशा नैऋत्य कोण में तृतीय प्रहरार्ध। नैऋत्य से छठवीं दिशा पूरब में चतुर्थ प्रहरार्ध इत्यादि क्रम से स्थापना करने पर चक्र बन जायेगा। इसमें गूढ़ यामार्द्ध के सम्मुख की यात्रा युद्धादि के लिए नहीं करना चाहिए।

गूढचक्रम्		
ई० ७। १५	पू० ४। १२	आ० १। ९
उ० २। १०	×	द० ६। १४
वा० ५। १३	प० ८। १६	नै० ३। ११

उदाहरण—लंका नगरी की दिशा दक्षिण है और युद्ध के लिए राम[1] को यात्रा करनी है। तो दिन या रात्रि में तीसरे प्रहर का उत्तरार्द्ध अर्थात् छठवाँ तथा चौदहवाँ प्रहरार्द्ध त्याग कर यात्रा करना उत्तम होगा। रण के अतिरिक्त मल्लयुद्ध, द्यूत या मुकदमे के सम्बन्ध में यात्रा काल में भी इसका विचार करना चाहिए ॥ २० ॥

रविचन्द्रयोः पृष्ठादिदिग्स्थितौ जयपराजयौ चाह—

पृष्ठेऽर्को यदि दक्षिणेपि पुरतश्छायाथ वामे जयः
किन्त्वर्के वहतीह यायिनि विधौ वाहस्थिते स्थायिनि ।
छाया पृष्ठगदक्षिणा निशि शशी वामेऽग्रतो वा जयो
यातुश्चन्द्रवहे परस्य तु रवेर्वामः शशीष्टः क्षयी ॥ २१॥

अन्वयः—अर्कौ यदि पृष्ठे दक्षिणेपि अथ छाया पुरतः वामे जयः। किन्तु इह अर्के वहति यायिनि विधौ वाहस्थिते स्थायिनि (जयः इति विशेषः)। निशि शशी वामेऽग्रतो वा छाया पृष्ठग दक्षिणा चन्द्रवहे यातुः परस्य तु रवेर्वामः जयो शशी क्षयी इष्टः।

विजया—स्थायिनः यायिनोऽपि वा अर्कः सूर्यः यदि दिने पृष्ठे दक्षिणभागे स्यात्तदा छाया पुरतः स्वाग्रप्रदेशे वामप्रदेशे वा पतेत् तदा यायिस्थायिनोर्जयः किंतु इह अयं विशेषः। अर्के वहति दक्षिणभागस्थे पिङ्गलाख्यरविनाड्यां प्राणवायौ वहत्यर्के च पृष्ठदक्षिणस्थे यायिनि जयो न स्थायिनि। पृष्ठदक्षिणस्थेर्के विधौ चन्द्रे वाहस्थिते वहति वामभागस्थेडाख्यचन्द्रनाड्यां प्राणवायौ वहति स्थायिनि जयः। निशि रात्रौ तु शशी चन्द्रौ निजवामभागे अग्रतो वा चेत्तदा छाया स्वपृष्ठदेशे स्वदक्षिणप्रदेशे च गच्छति तदा यायिस्थायिनोर्जयः। किन्त्वयं विशेषः। वामाग्रतो गते चन्द्रे चन्द्रनाडी वहति च यातुर्जयो न स्थायिनः। परस्य स्थायिनस्तु वामाग्रगे चेत्सूर्यनाडी वहति च न यायिनः। क्षयी क्षीणः शशी चन्द्रो वाम एव इष्टः प्रशस्तः।

---

१. मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आधीन ही सभी मुहूर्तादि भी हैं अतः उसके नाम का उदाहरण मात्र किसी ब्याज से भगवान् का नाम लेने के लिए ही दिया गया है।

भाषा—यदि सूर्य पृष्ठ भाग में रहता है तो छाया मनुष्य के आगे आती है और यदि दक्षिण भाग में रहता है तो छाया वाम भाग में पड़ती है यह सर्वविदित है। उस समय युद्ध करने से स्थायि तथा यायी दोनों की विजय होती है। किन्तु यदि उस समय सूर्य नाड़ी (दक्षिण स्वर) चलता हो तो यायी का जय होता हैं। वामस्वर (चन्द्रस्वर या नाड़ी) चलता हो तो स्थायी का जय होता है। ऐसे ही रात्रि में चन्द्रमा वाम भाग या अग्रभाग में हो तो उसकी छाया दक्षिण या पृष्ठ भाग में होगी। उस समय भी युद्धारम्भ में स्थायी यायी दोनों की विजय होता है। किन्तु वामस्वर में यायी और दक्षिणस्वर में स्थायी की विजय कहनी चाहिए। क्षीण चन्द्रमा वाम भाग में शुभ होता है ॥ २१ ॥

पूर्वादि दिगवस्थितचन्द्रवशात् जयपराजयज्ञानमाह:—

प्राचीमुदीचीं वा चन्द्रे गते स्थायी जयी भवेत्।
प्रतीचीदक्षिणादिक्स्थे यायी विजयमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

अन्वय:—सुगमम्।

विजया—चन्द्रे प्राचीं पूर्वदिशं गते, उदीचीं उत्तरां दिशं गते सति स्थायी जयी भवेत्। एवम् चन्द्रे प्रतीचीं पश्चिमा दिक् दक्षिणांदिक्च स्थिते सति यायिनो जयो भवेत्।

भाषा—यदि चन्द्रमा पूर्व या उत्तर दिशा में हो तो स्थायी राजा की तथा चन्द्रमा पश्चिम या दक्षिण दिशा में हो तो यायी राजा या व्यक्ति की जय होती है। कुछ आचार्यों ने दक्षिण और उत्तर दिशा में चन्द्रमा के होने को दक्षिणायन और उत्तरायण माना है जो असंगत जान पड़ता है।

वायुबलमाह—

वायुः पृष्ठे दक्षिणे च वहन्सूचयते बलम्।
सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः ॥ २३ ॥

अन्वय:—वायु: पृष्ठे दक्षिणे च वहन् भटानां बलम् सूचयते। सम्मुखीनश्च वामश्च (वहन् वायु:) (भटानां) भङ्गसूचको (भवेत्)।

विजया—वायु: पृष्ठे पृष्ठभागे दक्षिणे दक्षिणभागे च वहन् बलम् विजयं तथा सम्मुखीन: वामश्च वहन् भटानां योद्धानां भङ्गं पराजय: सूचयते।

भाषा—युद्ध के समय पीठ या दक्षिण भाग की ओर वायु चले तो युद्ध

करने वाले को बल मिलता है अर्थात् विजय होती है। और सम्मुख तथा वाम भाग की वायु चले तो वीरों को हतोत्साह होता है। और पराजय होता है।

उदाहरण—पूर्व या पश्चिमकी ओर मुख करके युद्धरत काल में यदि पश्चिम या दक्षिण की ओर हवा चल रही हो तो जय होता है क्योंकि पूर्व मुख वाले योद्धा का बल बढ़ता है॥ २३॥

राहुबलमाह—

> प्राग्वातान्तक शम्भुपाशिहुतभुक्पौलस्त्यरक्षो दिशो
> यामार्द्धैरगुरह्नि पाशिककुभोऽसौ पष्ठि षष्ठीं निशि।
> पृष्ठे दक्षिणतः शुभो द्विघटिकोऽसौ तुर्यतुर्यां व्रज-
> न्नीशावाक्पवनेन्द्रराक्षसहिमग्वग्नि प्रतीचोदिशः॥ २४॥

अन्वयः—अगुः अह्नि प्राक् वात अन्तक शम्भु पाशि हुतभुक् पौलस्त्य रक्षो दिशः यामार्द्धैः असौ निशि पाशिककुभः पष्ठि षष्ठीं (दिशं) याति पृष्ठे दक्षिणतः शुभः। पुनरसौ द्विघटिको राहुः तुर्य तुर्यां व्रजन् ईश अवाक् पवन इन्द्र राक्षस हिमगु अग्नि प्रतीचो दिशः याति।

विजया—अगुः राहुः अह्नि दिने प्राक् पूर्वदिशं प्रथमेऽर्द्धप्रहरे याति। पुनश्च क्रमेण द्वितीयादि अष्टसु प्रहरार्द्धेषु वात वायव्यकोणे, अन्तक दक्षिणे, शम्भु ऐशान्यां पाशि पश्चिमे, हुतभुक् आग्नेयां, पौलस्त्यः उत्तरस्यां रक्षः राक्षसां दिशि नैॠत्य-कोणेति भावः राहुर्याति। अथ निशि रात्रौ पाशिककुभः पश्चिमां दिशमारभ्य षष्ठीं षष्ठीं दिशं राहुः याति। असौ द्विघटिको राहुः तुर्यं तुर्यां दिशं व्रजन् गच्छन् क्रमेण ईशानकोणे, अवाचि दक्षिणस्यां, पवने वायुकोणे, इन्द्रे पूर्वस्यां, राक्षसे निॠतिकोणे, हिमगोः उत्तरे, अग्निकोणे, प्रतीच्यां चैतासु दिक्षु घटिकाद्वयेन एकैकां दिशं याति। असौ पृष्ठे दक्षिणतश्च शुभो भवति।

भाषा—राहु के बल को बतला रहे हैं—यह दिवा राहु, निशि राहु और द्विघटिका राहु ऐसे तीन प्रकार से वर्णित है तथा पीछे और दक्षिण दिशा में शुभ होता है। दिवाराहु=दिन में राहु क्रमशः पूर्व में प्रथमयामार्ध, वायव्य में द्वितीय यामार्द्ध दक्षिण में तृतीय यामार्द्ध, ईशान में चतुर्थ यामार्द्ध पश्चिम में पञ्चमयामार्द्ध अग्निकोण में षष्ठयामार्द्ध, उत्तर में सप्तमयामार्द्ध, और नैॠत्यकोण में अष्टमयामार्द्ध में राहु रहता है। रात्रि में पश्चिम में प्रथमयामार्द्ध, अग्निकोण में द्वितीययामार्द्ध,

उत्तर में तृतीय यामार्द्ध, नैऋत्य में चतुर्थ यामार्द्ध, पूर्व में पञ्चम यामार्द्ध, वायव्य में षष्ठ यामार्द्ध, दक्षिण में सप्तम यामार्द्ध और ईशान में अष्ठमयामार्ध में राहु रहता है। पश्चिम से आरम्भ कर छठवीं छठवीं दिशाओं के क्रम से चक्र बनाना चाहिए। तथा द्विघटिका राहु ईशान कोण से आरम्भ करते हैं और चौथी चौथी दिशाओं में रहता है। यथा १–२ घड़ी ईशान में, ३–४ दक्षिण में, ५–६ घड़ी वायव्य में और ७-८ घड़ी पूर्व में इसी क्रम से आगे भी समझना चाहिए।

उदाहरण—यदि रघुनाथजी को पूर्व दिशा जाने के लिए राहु बल का ज्ञान करना है। तो दूसरे और तीसरे पहर के पूर्वार्द्ध में अथवा रात्रि के पहले और चौथेपहर के पूर्वार्द्ध में यात्रा करना उत्तम होगा ॥ २४ ॥

दिवाराहुचक्रम्			निशिराहुचक्रम्			द्विघटिकंराहुचक्रम्		
ई० ४	पूर्व १	अ० ४	ई० ८	पू० ५	अ० २	ई० १-२ घड़ी	पूर्व ७-८	अ० १३-१४
उत्तर ७		दक्षिण ३	उत्तर ३		दक्षिण ७	उत्तर ११, १२	●	दक्षिण ३-४
वा० २	पश्चिम ५	नैऋत्य ८	वायव्य ६	पश्चिम १	नै० ४	वायव्य ५-६	प० १५-१६	नै० ९ १०

* स्वयमेव मध्याह्लोत्तरं भ्रमति।

योगिनीबलमाह—

प्राक्सोमानलरक्षोऽवाक्पाशीरेशदिक्षु दर्शान्तैः।
तिथिभिस्तिथिपदतोऽर्द्धप्रहरैरिनवत्तु[1] योगिनी शस्ता ॥ २५ ॥

अन्वयः—सुगमम्।

विजया—प्राक् पूर्वदिक्, सोम उत्तरदिक्, अनलोऽग्निकोणः, रक्षो नैऋत्यकोणः, अवाक् दक्षिणादिक्, पाशीपश्चिमा, इरो वायुः, ईशा ईशानदिक्, एतासु दिक्षु दर्शान्तैः प्रतिपदमारभ्य दर्शान्तैः दर्शान्तं यावत् तिथिभिः योगिनी भ्रमति। अर्थात् प्रतिपन्नवम्यां पूर्वदिशि, द्वितीयादशम्यां चोत्तरदिशि, तृतीयैकादश्यामग्निकोणे चतुर्थ्यां द्वादश्यां च निऋतिकोणे, पञ्चम्यां त्रयोदश्यां च दक्षिणस्यां दिशि, षष्ठ्यां चतुर्दश्यां पश्चिमायां, सप्तम्यां पूर्णिमायां च वायव्यां, अष्टम्याममायाञ्च

१. 'पृष्ठेऽर्को यदि दक्षिणेपि'……१ श्लो० २१।

ऐशान्यां, योगिनी भ्रमति। तिथिपदतः तिथिस्थानात् अर्धप्रहरैः योगिनी च अष्टसु अर्द्धप्रहरेषु पूर्वक्रमेणैव (प्राक्सोमानलरक्षो···) भ्रमति। सा च योगिनी इनवत् सूर्यवत् पृष्ठदक्षिणतः शुभा भवति।

भाषा—प्रतिपद से अमावस तक योगिनी का वास पूर्व, उत्तर, अग्निकोण, नैऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य और ईशान इस क्रम से योगिनी का वास इन दिशाओं में रहता है। अर्थात् १–९ पूर्व, २–१० उत्तर, ३–११ अग्नि कोण, ४–१२ नैऋत्य, ५–१३ दक्षिण, ६–१४ पश्चिम, ७–१५ वायव्य और ८–३० तिथियों में योगिनी का वास ईशान कोण में रहता है। तथा तिथि पद के अनुसार अष्टमांश प्रमाण आधी आधी प्रहर उपरोक्त दिशाक्रम के अनुसार एक ही तिथि में आठों दिशाओं में भी योगिनी का वास रहता है। सूर्य की तरह (श्लोक २१ के अनुसार) पृष्ठ तथा दक्षिण की योगिनी शुभ होती है। उक्तं च 'सा योगिनी सम्मुखवामगाचेन्नशुभा दक्षिणे पृष्ठे च शुभा।' इति ॥

उदाहरण—यदि किसी को पूर्व दिशा की यात्रा पञ्चमी तिथि को करनी हो, तो पञ्चमी तिथि में योगिनी का वास दक्षिण दिशा में होने से पूर्व दिशा में जाने वाले के लिए दाहिने पड़ने से शुभद होगी। यदि यात्रा द्वितीया को करनी पड़े तो योगिनी का वास उत्तर होने से यात्री के वाम भाग में पड़ने से यात्रा शुभ नहीं होगी। अत्यावश्यक होने पर तिथि पद का विचार कर अनुकूल योगिनी के होने पर भी यात्रा कर सकते हैं ॥ २५ ॥

योगिनीवासचक्रम्		
ईशान ८-३०	तिथि १–९ पूर्व	३–११ अग्नि
उत्तर २-१०	×	दक्षिण ५-१३
वाय० ७-१५	पश्चिम ६-१४	नैर्ऋत्य ४-१२

तिथिपदतो योगिनीचक्रम्		
८ यामार्ध ईशान	१–यामार्ध पूर्व	३–यामार्ध अग्नि
२–यामार्ध उत्तर	प्रतितिथौ अष्टमांशेन भ्रमति	५–यामार्ध दक्षिण
७–यामार्ध वायव्य	६ यामार्ध पश्चिम	४–यामार्ध नैऋत्य

योगिनीनामान्याह—

ब्राह्मी कौमारी वाराही वैष्णव्यथैन्द्री च।
स्याच्चण्डिका च माहेश्वरी महालक्ष्म्यभिख्या च ॥ २६ ॥

अन्वयः—सुगमम्।

विजया—ब्राह्मी, कौमारी, वाराही, वैष्णवी अथ च ऐन्द्री चण्डिका माहेश्वरी महालक्ष्मी अभिख्या च स्यात्।

भाषा—ब्राह्मी, कौमारी, वाराही, वैष्णवी, ऐन्द्री, चण्डिका, माहेश्वरी और महालक्ष्मी ये आठ योगिनियाँ आठों दिशाओं में रहती हैं। इनका नाम प्रतिपदादि क्रम से भी कहा गया है ॥ २६ ॥

राहुयुक्तयोगिनी बलप्रशंसामाह—

पृष्ठे दक्षे योगिनी राहुयुक्ता यस्यैकोऽयं शत्रुलक्षं निहन्ति।
श्रेष्ठः सर्वेभ्यो बलेभ्यस्तदेतत् संक्षेपोऽयं सर्वसारोऽभ्यधायि ॥ २७ ॥

अन्वयः—यस्य राहुयुक्ता योगिनी पृष्ठे दक्षे (च भवेत् सः) एकः शत्रुलक्षं निहन्ति। सर्वेभ्यो बलेभ्यो अयं श्रेष्ठः तदा एतद् सर्वसारः संक्षेपोऽभ्यधायि।

विजया—यस्य योद्धारः राहुयुक्ता राहुणा सहिता योगिनी पृष्ठे पृष्ठभागे दक्षे दक्षिणभागे च भवेत् तदा अयं एकः शूरः शत्रूणां लक्षं निहन्ति, मारयति। तदेतद् योगिनीराहुबलं सर्वेभ्यः श्रेष्ठम्। मया अयं संक्षेपः सर्वसारः अभ्यधायि कथितः।

भाषा—राहु से युक्त योगिनी यदि किसी योद्धा के पृष्ठ या दक्षिण भाग में हो तो वह योद्धा अकेला ही लाखों शत्रुओं का संहार करता है। यह योग सभी योगों से श्रेष्ठ है अतः संक्षेप में सबका सार कहा है।

उदाहरण—यदि चैत्रकृष्ण पञ्चमी को उत्तर की यात्रा युद्ध के लिए किसी को करनी हो तो उस दिन योगिनी दक्षिण में रहेगी तथा दूसरे पहर के पूर्वार्द्ध में राहु के दक्षिण होने से दोनों का बल पीठपीछे मिलने से युद्ध में निश्चय ही जीत होगी ॥ २७ ॥

वारक्रमेण युद्धे वर्ज्यान्कालार्द्धप्रहरार्द्धानाह—

हालान्तकाभसख-यामदलैस्तु कालः
सूर्यादिवासरगतो युधि वर्जनीयः।
भासारमेदलति यामदलानि भानु-
वारक्रमादपि नरः स्वहितार्थमुज्झेत् ॥ २८ ॥

अन्वयः--युधिकालः वर्जनीयः । सूर्यादि वासरगतः हालान्तकाभसखयाम दलैः तु (कालः वर्जनीयः) । पुनः भासारमेदलति यामदलानि अपि भानुवार-क्रमात् नरः स्वहितार्थं उज्झेत् ।

विजया—युधि युद्धकाले कालः कथं भूयोऽयं कालः सूर्यादि वासरगतः हा ८ ला ३ न्त ६ का १ भ ४ स ७ ख २ यामदलैः कालः वर्जनीयः त्याज्यः । पुनः भा ४ सा ७ र २ मे ५ द ८ ल ३ ति ६ यामदलानि च भानुवारक्रमात् नरः स्वहितार्थम् उज्झेत् त्यजेदित्यर्थः ।

भाषा—सूर्यादिवारों में क्रम से ह ८, ल ३, त ६, क १, भ ४, स ७, ख २ यह अर्द्ध याम है । अर्थात् रविवार को आठवाँ यामार्द्ध, सोमवार को तीसरा यामार्द्ध, मंगलवार को छठाँ, बुधवार को पहला, गुरुवार को चौथा, शुक्र को सातवाँ, शनि को दूसरा अर्द्ध यामकाल युद्ध में वर्जनीय है । और सूर्यादि वारों में क्रमशः भा ४, सा ७, र २, म ५, द ८, ल ३, ति ६ इन प्रहरों का अर्द्ध-याम काल अपने हित के लिए मनुष्य को त्याग देना चाहिए ।

कालार्द्धचक्रम्							प्रहरार्द्धचक्रम्						
हा	ल	त	का	भ	स	ख	भा	सा	र	मे	द	ल	ति
८	३	६	१	४	७	२	४	७	२	५	८	३	६
सू	च	म	बु	बृ	शु	श	सू	च	म	बु	बृ	शु	श

उदाहरण—श्रीशमशेर सिंहजी शुक्रवार को युद्धार्थ प्रस्थान करेंगे । अतएव सातवाँ और तीसरा प्रहरार्द्ध त्यागकर यात्रा करना शुभदायक सिद्ध होगा । २८ ।

ककुभदिग्ज्ञानमाह—

वारेशमैन्द्र्यां विनिवेश्य पश्ये-
त्प्रदक्षिणस्थानगतान् क्रमेण ।
यामार्द्धभोगाच्छनिरस्ति यस्यां
यदा न यायात्ककुभं तदा ताम् ॥ २९ ॥

अन्वयः--वारेशम् ऐन्द्र्यां विनिवेश्य प्रदक्षिणस्थानगतान् क्रमेण पश्येत् । यदा यस्यां शनिः अस्ति तदा ताम् ककुभं न यायात् ।

विजया—वारेशम् वारस्वामिनम् सूर्याद्यम् ऐन्द्रयां पूर्वस्यां दिशि विनिवेश्य संस्थाप्य अपरान् अन्यान् वासरान् क्रमेण प्रदक्षिणतः प्रदक्षिणाक्रमेण स्थानगतान् पश्येत् विचारयेत् । यथा यो वारः वर्तमानः भवति तं पूर्वस्यां दिशि च संस्थाप्य अग्रिम वारम् अग्निकोणे तदग्रिमं दक्षिणेत्यादि क्रमेण ईशानान्तं च स्थापयेत् । एवं वारान्पश्येत् । एवं न्यासे कृते सति यस्यां दिशि शनिः शनैश्चरः अस्ति वर्त्तते तदा तां ककुभं दिशं वर्जयेत् । अर्थात् शनिः यस्यां दिशि भवति सा दिक् पूर्वतः कियती तत्संख्याके चार्द्धप्रहरे तां ककुभं दिशं वर्जयेदित्यर्थः ।

भाषा—सूर्यादि वारों में जो वारेश हो उसे पूर्व दिशा में रखकर उसके अग्रिम वारेशों को प्रदक्षिणा क्रम से स्थापित कर देखे कि शनि कहाँ पड़ रहा है । जिस दिशा में शनि हो वह पूर्व से किस संख्या की दिशा में है यह ज्ञात कर उस संख्या के अर्द्ध प्रहर में यात्रा उस दिशा में नहीं करनी चाहिए ।

उदाहरण—चैत्रकृष्ण पञ्चमी गुरुवार को यदि कोई व्यक्ति दक्षिणदिशा की यात्रा करे तो उस दिन वारेश गुरु को पूर्व में स्थापित करने से दक्षिण में शनि पूरब से तीसरी दिशा में है अतः इस दिन दक्षिण की यात्रा के लिए तीसरा यामार्द्ध त्याग कर ही यात्रा करना उत्तम होगा ॥ २९ ॥

ककुभदिक्चक्रम्

ई० ८	सू पूर्व १	च आ० २
श उ. ७		मं द० ८
शु वा.६	गु प० ५	बु नै० ४

युद्धे वर्ज्यहोरामाह—

वारारम्भाद्धट्यः खाध्ना माप्ताश्च वारपाद्धोराः ।
रविसितबुधेन्दुशनिगुरुभौमानामरिखगस्य सा वर्ज्या ॥ ३० ॥

अन्वयः—वारारम्भात् घट्यः खाघ्ना माप्ताश्च वारपा रवि सित बुध इन्दु शनि गुरु भौमानां होराः सा अरिखगस्य वर्ज्या ।

विजया—वारस्य दिनस्य आरम्भात् वारप्रवृत्तिमारभ्येति भावः । यावन्त्यो

घट्यः घटिका (ताः) खाघ्ना द्विगुणिता कार्या । तदनन्तरं मासाः पञ्चभिर्भक्ताः वारपा रवि १, सित २, बुध ३, इन्दु ४, शनि ५, गुरु ६, भौमः ७ एतेषां होराः क्रमेण भवन्ति । सा सार्द्धद्वयघटिका प्रमाणाः होरा अरेः खगस्य शत्रुग्रहस्य वर्ज्या त्याज्येति भावः । अर्थात् यः योद्धुम् गच्छति तस्य राशेः यः अधिपः तस्य यः शत्रुग्रहस्तस्य होरां युद्धे वर्जयेत् ।

भाषा—वारप्रवृति[1] या वारारम्भ से जितनी गतघटी हो उसे दो से गुणा कर पाँच का भाग देने पर जो लब्धि हो वह वारपति होता है। जिस दिन जो वार हो उससे सूर्य शुक्र बुध चन्द्र शनि गुरु और मंगल इस क्रम से वार होरा होती हैं। यह अपनी राशि के स्वामी का जो ग्रहशत्रु हो उस ग्रह की होरा युद्ध में वर्जित है।

उदाहरण—रविवार को वारारम्भ से ५।० गत माना अतः इसे दूना किया तो १०।० आया इसमें ५ का भाग दिया तो लब्धि २ आई अतएव वारपति सूर्य से आरम्भ कर गिनने से सूर्य और शुक्र की होरा समाप्त होकर बुध की होरा वर्तमान काल में चल रही है।

अरिखगस्य इस नियम के अनुसार बुधकी राशि मिथुन और कन्या है। अतः बुध का शत्रु ग्रह नैसर्गिक चन्द्रमा है अतः चन्द्र की होरा हो तो उस समय युद्ध में नहीं जाना चाहिए ॥ ३० ॥

---

१. 'पादोनरेखा परपूर्वयोजनैः पलैर्युतोना स्थितयो दिनार्द्धतः। ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाधो दिनपप्रवेशनम् ॥' इति ॥ मूहूर्त्त-चिन्तामणि के शुभाशुभ प्रकरण के ५४ वें श्लोक के अनुसार जिस स्थान के वारप्रवृति ज्ञान की आवश्यकता हो वह स्थान मध्यरेखा से जितने योजन पर, पूर्व या पश्चिम हो उसे अपने चतुर्थांश से हीन करके उतना पलात्मक मान १५ में जोड़ने या घटाने से (मध्यरेखा से पूरब योग तथा पश्चिम ऋण करना चाहिए) जो अंक आवे उसे दिनार्द्ध से अन्तर करें। यदि वह दिनार्द्ध से ऊन या अधिक हो तो सूर्योदय से पूर्व या पश्चात् वारप्रवृत्ति होती है जो कठिन है। अतः वशिष्ठसंहिता के 'वारप्रवेशेर्विज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि। अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयाद्भवेत् ॥' के अनुसार सूर्योदयकाल से वारप्रवृत्ति मानना चाहिए।

अथ घातव्यवस्था

विरुद्धयामगूढराहुरव्यादिषु युद्धाचरणे प्रहारस्थलान्याह—

वामांसेऽत्र विरुद्धयामदलजः प्राग्भागके गूढजो,
राहोः स्यात्तु कुचोधरे श्रुतिशिरो हस्ते प्रहारो रवेः।
चन्द्रादास्यभुजद्वये प्रहरणं शत्रुग्रहस्यापि तु
स्याद्घातः किल होरया हृदि मुखे खड्गादि युद्धे ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—विरुद्धयामदलजः वामांशेऽत्र गूढजो प्राग्भागके राहोः स्यात्तु कुचाधरे रवेः श्रुतिशिरोहस्ते प्रहारः चन्द्रात् आस्य भुजद्वये प्रहरणं, शत्रुग्रहस्यापि तु होरया हृदि मुखे किल खड्गादियुद्धे ध्रुवम् घातः स्यात्।

विजया—विरुद्धयामगूढराहुरव्यादिषु कालेषु युद्धाचरणे प्रहारस्थलानि कथितम्–अत्र वर्ज्यार्द्धप्रहरादौ युद्धे सत्येषु अङ्गेषु निश्चयो घातो भवति। तदाह–विरुद्धयामदलजः विरुद्धं विपरीतं च यत् यामदलं यामार्द्धं तज्जन्यः विरुद्धयामदलजः (प्रहारः योद्धुः) वामांसे वामस्कन्धे स्यात्। गूढजो अर्द्धप्रहरजः प्राग्भागके शरीरस्य पूर्वभागके उर्ध्वभागेति भावः। एवम् राहोः कुचाधरे कुचयोः अधरे च प्रहारः स्यात्। रवेः हतादिक् श्रुतिकर्णयोः शिरो शिरसि, हस्ते च घातं करोति। चन्द्रात् चन्द्रहतादिक् भुजद्वये च घातं भवति। शत्रुग्रहस्य होरा चेत् हृदि हृदये मुखे च ध्रुवम् घातं करोति।

भाषा—युद्ध या विवाद काल में यामार्द्ध, रवि, राहु आदि में यदि यामार्द्ध विरुद्ध हो तो शरीर के वाम स्कन्ध में, गूढ विरुद्ध हो तो शरीर के उर्ध्व भाग में, राहु के विपरीत होने पर कुचों पर तथा अधर पर, सूर्य विरुद्ध हो तो कर्ण शिर तथा हाथ पर, चन्द्रमा विरुद्ध हो तो दोनों भुजाओं पर, और होरा विरुद्ध हो तो मुख तथा हृदय पर खड्गादि शस्त्रों का प्रहार युद्ध में अवश्य होता है।

विशेष:—इस घातव्यवस्था के द्वारा १. प्रथम तो ज्योतिषी से कोई पूछे कि युद्धरत योद्धाओं में किसके किस स्थान पर घात होगा तो इस समरसार ग्रन्थ का साङ्गोपाङ्ग ज्ञाता ज्योतिषी अवश्य बता सकता है कि हारनेवाला योद्धा कौन है और उसके किस अङ्ग पर चोट लगेगी। २. अपना शत्रु यदि विरुद्ध यामादि

में युद्ध के लिए आया है तो हम उसके किस अंग पर प्रहार करें कि वह शीघ्र धराशायी हो जाय। महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण ने इसी विद्या के द्वारा भीम को इङ्गित किया कि तुम दुर्योधन के जंघे में प्रहार करो।

ग्रहस्थित्या च प्रहारस्थलान्याह—

लग्नाद्राशेश्च पुंसः करिपुकपिनयाधोदभामातसंस्थाः,
खेटा हन्युर्नवापि द्विषमथ सहसा मूर्ध्नि वक्त्रे सहृत्के।
वक्षोजे चोरुदेशे गुद इति तदनु ग्रन्थि दोर्गण्डभागे,
वास्तुः सूनुः सकालः खलसमनिशगः कर्णकण्ठे शये च[1] ॥ ३२ ॥

अन्वयः—पुंसः लग्नात् राशेश्च क-रिपु-कपि-नया-धो-द-भा-मा-त संस्थाः नवापि खेटाः मूर्ध्नि वक्त्रे सहृत्के वक्षोजे चोरुदेशे गुद इति तदनु ग्रन्थि दोर्गण्डभागे द्विषमथ सहसा हन्युः वस्तुः सूनुः सकालः खलसमनिशगः कर्णकण्ठे शये च हन्युः।

विजया—पुंसः पुरुषस्य लग्नात् जन्मलग्नात् प्रश्नलग्नात् जन्मराशेश्च क १, रिपु १२, कपि ११, नया १०, धो ९, द ८, भा ४, मा ५, त ६, एषु अर्थात् प्रथम, द्वादश, एकादश, दशम, नवम, अष्टम, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठस्थानेषु स्थितेषु सत्सु खेटाः ग्रहाः सूर्यादिग्रहाः युद्धे मूर्ध्नि मस्तके, वक्त्रे मुखे, सहृत्के सहृद्मुखे, वक्षोजे स्तने, ऊरुदेशे, गुदे, तदनु पश्चात् ग्रन्थि ग्रन्थिभागे, दोः भुजे, गण्डभागे कपोले द्विषं शत्रु एषु अवयवेषु सहसा हन्ति। वास्तुः वास्तुस्वामी गृहारम्भलग्नस्वामी गृहप्रवेशलग्नस्वामी वा ग्रहः ख २ गतस्तदा तस्य शत्रोः कर्णे च घातं करोति। युद्धे प्रवृत्तस्य सूनुः ज्येष्ठापत्यस्य लग्नेशो ग्रहः ल ३ तृतीये स्थितस्तदा शत्रोः कण्ठे घातं करोति। योद्धुः सकालराशेः अष्टमस्वामी समः सप्तमस्तदा तस्य शत्रोः अनिशं निरन्तरं शये हस्तपृष्ठे च घातं करोति।

भाषा—युद्ध करने वाले व्यक्ति के जन्मलग्न या जन्मराशि या प्रश्नलग्न से यदि सूर्यादि ग्रह १, १२, ११, १०, ९, ८, ४, ५, ६ इन स्थानों में रहे तो

---

१. 'लग्नाद्राशेश्च पुंसः शशि रवि शिवदिक् व्योमगोद्वोपवेद स्थानेन्ववर्थर्तु संस्था, रवि शशिकुजवित्पूज्यशुक्रादिखेटाः। घातं कुर्युर्यथोक्ताः शिरसि च वदने हृत्प्रदेशे स मूर्ध्निवक्षस्यूरुप्रदेशे गुद इति तदनु ग्रन्थि दोर्गण्डभागे ॥' इति पाठान्तरम् ॥

क्रमशः शत्रु के मस्तक, मुख, हृदय, वक्षस्थल, ऊरु, गुदा, ग्रन्थि, भुजा और कपोल पर घात होता है। गृहारम्भ या गृहप्रवेश लग्न का स्वामी दूसरे हो तो कानों पर ज्येष्ठ पुत्र के जन्म लग्न का स्वामी तृतीय (तीसरे) हो तो कण्ठ पर और अपना अष्टमेश सातवें हो तो शत्रु के हाथ और पीठ पर निरन्तर घात करता है ॥ ३२ ॥

॥ इति समरसारे गूढयामार्द्धयोगिन्यादि सह प्रहारलक्षण-
कथनप्रकरणं तृतीयः ॥

युद्धेऽहिचक्रविरुद्ध त्याज्य नक्षत्राणि आह—

आर्द्रादिभिस्त्रिनाड्यामहिचक्रे यद्येक नाड्यां स्युः ।
नामार्कचन्द्रभानि प्रघने तदहस्त्यजेद्यत्नात्[1] ॥ ३३ ॥

---

१. नरपति जयचर्या स्वरोदय में सूर्य फणिचक्रं के नाम से चार श्लोकों का अभिलेख इसी भाव को व्यक्त करता है तथा इससे विधि सरल है दोनों को इस प्रकार स्पष्ट समझा जा सकता है—

सप्त विंशति भान्यत्र पंक्ति युक्ता क्रमेण च ।
अ्यन्तरे अ्यन्तरे वेध, फणिचक्रं त्रिनाडिकम् ॥ १ ॥
यत्र ऋक्षे स्थितोभानुस्तदादौ गणयेद् बुधः ।
नामं ऋणं स्थितं यत्र ज्ञेयं तत्र शुभाशुभम् ॥ २ ॥
कुर्यान्मृत्युं च रोगं च नाडीवेधगतं नृणाम् ।
वर्जयेत् सर्वकार्येषु युद्धकाले विशेषतः ॥ ३ ॥
निर्वेधऋक्षमध्यस्थं यस्य नाम प्रजायते ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि संग्रामे विजयी भवेत् ॥ ४ ॥

सर्पाकारत्रिनाडिचक्रम् (स्वरोदये)
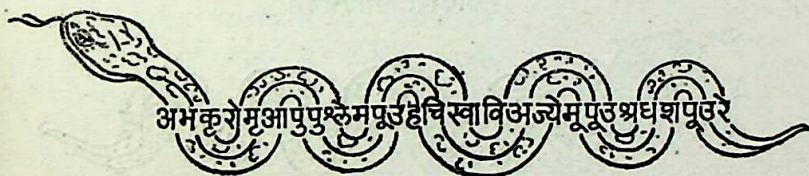
अन्वयः—आर्द्रादिभिस्त्रिनाड्यामहिचक्रे यद्येकेनाड्यां नामार्कचन्द्रभानि स्युः तदा प्रधने तदहः यत्नात् परित्यजेत् ।

विजया – यस्मिन्दिने आर्द्रादिभिः आर्द्रादिनक्षत्रैः स्त्रिनाड्या नाडीत्रय निर्मिता अहिचक्रे सर्पाकारत्रिनाडीचक्रेतिभावः । यदि एकस्यां नाड्यां नामभं अर्क सूर्याधिष्ठितनक्षत्रं तथा च चन्द्र चन्द्राधिष्ठितं च नक्षत्रं त्रीण्यपि स्युः तदहः तद्दिनं प्रधने युद्धे यत्नात् त्यजेत् । सर्पाकार त्रिनाडी चक्रे आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, भरणी, कृतिका एतानि नव नक्षत्राणि एकनाडी गतानि । पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, रोहिणी, द्वितीय नाडी स्थितानि भानि नव । शेषाणि पुष्य, श्लेषा, चित्रास्वाती, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर्ष भानि तृतीयनाडी गतानि च ।

भाषा—आर्द्रादि सर्पाकार त्रिनाड़ी चक्र के अन्दर यदि सूर्यनक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र और व्यक्ति का नाम, नक्षत्र ये तीनों एक नाड़ी पर हों उस दिन युद्ध या वाद-विवादादि कार्य करने से हानि होती है । जैसे सूर्य आर्द्रानक्षत्र में हो और चन्द्रमा अनुराधा में हो तथा नाम नक्षत्र धनिष्ठा में पड़े तो, जिस दिन यह स्थिति हो उस दिन युद्धादि नहीं करना चाहिए ।

उदाहरण—दिनांक २४ दिसम्बर सन् १९८४ ई० सोमवार के दिन सूर्य मूलनक्षत्र पर है तथा चन्द्रमा उत्तरषाढ़ा नक्षत्र पर है तथा राजीव का नाम नक्षत्र चित्रा है । ये तीनों एक नाड़ी पर नक्षत्र नहीं हैं अतः दो नक्षत्रों के एक नाड़ी गत होने से जीत की स्थिति सामान्य है ।। ३३ ।।

सर्पाकारत्रिनाडिचक्रम्

वारदिक्शूलज्ञानमाह—

शनिचन्द्रौ गुरुः सूर्यसितौ कुजबुधौ त्यजेत् ।
चतुर्दिक्षु निषिद्धार्द्धयाम, शूलं विशेषतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—(पूर्वादि) चतुर्दिक्षु शनिचन्द्रौ, गुरुः, सूर्यसितौ, कुजबुधौ, त्यजेत् । विशेषतः निषिद्धार्द्धयामे शूलम् ।

विजया—पूर्वादि चतुर्दिक्षु क्रमेण शनिचन्द्रौ, गुरुः, सूर्यसितौ, कुजबुधौ त्यजेत् । विशेषतः निषिद्धार्द्धयामे शूलं ज्ञेयम् । अर्थात् शनिचन्द्रवारौ पूर्वस्यां त्यजेत् न गच्छेत् इत्यर्थः । अनयैव रीत्या गुरुं दक्षिणस्यां दिशि, सूर्यसितौ पश्चिमायां, भौमबुधवासरौ उत्तरस्यां त्यजेत् न गच्छेदित्यर्थः । चतुर्दिक्षु एवं क्रमेण बोधव्यम् । निषिद्धार्द्धयामविषये यस्मिन्वासरे योऽर्द्धयामो निषिद्धः स सर्वथा त्याज्यः । तस्मिन्यामार्द्धे वारशूले च गमनं अवश्यमेव वर्जयेत् । यथा—शनिवासरे षष्ठे, चन्द्रवासरे सप्तमे यामार्द्धे, पूर्वस्यां दिशि न गच्छेत् । गुरुवासरे चाष्टमयामार्द्धे यमदिशं न गच्छेत् । रविवासरे चतुर्थयामार्द्धे, शुक्रवासरे तृतीय-यामार्द्धे च पश्चिमां दिशं न गच्छेत् । भौमवासरे द्वितीययामार्द्धे, बुधवासरे च पंचमयामार्द्धे उत्तरां दिशं न गच्छेत् । एतेऽर्द्ध प्रहराः विशेषतो वर्ज्याः ।

भाषा—शनिवार और सोमवार को पूर्व दिशा का दिक्शूल है अतः यात्रा करना निषिद्ध है । इसी प्रकार गुरुवार को दक्षिण, रविवार और शुक्रवार को पश्चिम तथा मंगलवार, बुधवार को उत्तर दिशा का दिक्शूल होता है अतः युद्धादि कार्यों में शूल दिशा की यात्रा निषिद्ध है । 'सोम शनिचर पूरव न चालू, मंगर बुध उत्तरदिशि कालू' इत्यादि कुछ हिन्दी की चौपाइयाँ भी प्रायः लोक प्रचलित हैं ।

---

१. नारदसंहितायाम्—

'अद्रिबाणाब्धयस्तर्कतोयाकरधराधराः ।
वरणाग्निलोचनानि स्युः वेदबाहुशिलीमुखाः ॥
लोकेन्दुवसवो नेत्र शैलाग्नीन्दुरसोरसः ।
कुलिका यमघंटाख्या अर्द्धप्रहरसंज्ञकाः ॥
प्रहरार्द्धप्रमाणास्ते विज्ञेया सूर्यवासरात् ॥'

उदाहरण—गजानन्दशास्त्री को दक्षिण में गुरुवार को जाना अत्यावश्यक है। किन्तु गुरुवार को दक्षिण दिशा का दिक्शूल होने से यात्रा निषिद्ध है ऐसी स्थिति में अत्यावश्यक होने के कारण या तो सूर्योदय से १ घंटा पहले यात्रा करें अथवा गुरुवार का आठवां अर्द्धयाम त्याग कर उसमें यात्रा करें।

विशेष—कुलिक, यमघंट और अर्द्धप्रहर इन तीनों का यात्रा में त्याग करना चाहिए। देखें मुहूर्त चिन्तामणि:—'कुलिक: कालवेला च यमघण्टश्च कंटक:' इत्यादि। गर्गाचार्य ने देशभेद से इसका परिहार देते हुए 'अर्द्धयामस्तु: सर्वत: त्याज्य:' लिखा है। पियूषधारा टीका अवलोकन करने से स्पष्ट होगा।

दिक्शूलज्ञानार्थचक्रम्				
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
वार	शनि, सोम	गुरुवार	रवि, शुक्र	मंगल, बुध
अर्द्धयाम	६, ७	८	४, ३	२, ५

नवग्रहाणां स्वस्वभुज्यमाननक्षत्रेऽश्विन्यादि सप्तविंशतिनक्षत्राणामवान्तरभोगमाह—

धीघ्ना भभुक्तनाड्यो[1] नखाप्तिपरिशेषयोर्गतः सदपि।
तत्काले शशिभमिति रव्याद्या गतिनुतिलवस्तु घटिकेह ॥ ३५ ॥

अन्वयः—भभुक्तनाड्यो धीघ्ना नखाप्तिपरिशेषयोर्गतः सदपि। तत्काले शशिभमितिरव्याद्यागतिनुतिलवस्तु इह घटिका (ज्ञेया)।

विजया—भभुक्तनाड्यो भस्यनक्षत्रस्य भुक्तनाड्यः गतघटिकाः धीघ्ना नवगुणिताः ('कादिर्नवाङ्कानवटादिरङ्का' इत्यादिना धी=९) कार्याः ततो नखाप्ताः विंशतिभक्ताः च कार्याः। अत्र लब्धिः गतनक्षत्र संख्या भवन्ति। तन्नक्षत्रमारभ्य गणना कार्या। अग्रिमो नक्षत्रः वर्तमानेति। एवं शशिभमिति तात्कालिकचन्द्रनक्षत्रप्रमाणं भानोः सर्वर्क्षघटिकाः सप्तविंशतिभिर्भाज्याः लब्धे सति नक्षत्रघटिकाभाजिता च गतं भवेत्। खगानां सर्वघटिकाः पूर्वोक्तसहिता भवन्ति। गतिनुतिलवः नक्षत्र गतिः। यावत्सूर्यादिग्रहाणां या सर्वर्क्षघटिका भवन्ति घट्यात्मकं प्रमाणं भवति

१. 'खखड्घ्नं भयातं भभोगोद्धृतस्तं भभुक्तम्' इति नियमात्।

तासां षट्यंशघटिका प्रमाणं भवति। एवं या घटिका नक्षत्रस्य गता भवन्ति ताः घटिका प्रमाणेन भाजयेत्–या गतघटिकाः भवन्ति, ता घोघ्ना नव गुणिता नखाप्ताः लब्धं गतनक्षत्राणि भवन्ति। शेषं वर्तमानं भवति। एवं सूर्यचन्द्रौ विचारणीयौ, कस्मिन्नक्षत्रे तात्कालिकौ भवेतामित्यर्थः। सूर्यादिभोग्यनक्षत्राणां तद्भोग्यकालः षष्ट्यंशः।

भाषा—किसी नक्षत्र में कोई भी ग्रह जितने समय तक रहता है उतने ही समय में उस एक ही नक्षत्र में सत्ताइसों नक्षत्रों का अंतर भोग भी हो जाता है। ग्रह का पूरा भोग भभोग और गत भोग काल को भयात कहते हैं। भभोग घट्यात्मक, दिनात्मक या मासात्मक जो भी प्राप्त हो उस सम्पूर्ण मान को ६० घटी और उसके षट्यंश को १ घटी मानकर क्रिया करनी चाहिए। ग्रह के भयात घट्यादि को ९ से गुणा करके गुणनफल में २० का भाग देने से लब्धि तुल्य गतनक्षत्रान्तर भाग तथा अग्रिमनक्षत्र वर्तमान में ज्ञात होता है। गणना उसी नक्षत्र से होती है। तात्कालिक चंद्रनक्षत्र से और इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के नक्षत्र से प्रत्येक नक्षत्र में सभी नक्षत्रों का अंतर होता है।

उदाहरण—यदि इष्टकाल ४७।२१ तथा उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र का मान २।५६ तथा अगले दिन पुष्य नक्षत्र का मान १।७ है तो चन्द्र नक्षत्र पुष्य में अंतर भोग जानने के लिए, भयात् ४६।२५ तथा भभोग ५८।११ लाया। इस भभोग का षट्यंशमान=०।५८।११ घट्यादिक होगा। गणित में सरलता के लिए भभोग ५८।११ का पलात्मक मान ३४७१ से भयात् ४६।२५ का पलात्मक-मान २७८५ को ६० से गुणा किया तो १६७१०० में भाग देने से ४७।५२ भभुक्त नाड़ी प्राप्त हुई। इस प्रकार भभुक्त नाड़ी लाकर उसे ९ से गुणा किया ४७।५३ × ९ = ४२३।४६८ और ६० से चढ़ाया तो ४३०।४८ हुआ। इसमें २० का भाग दिया तो लब्धि २१, शेष १०।४८ आया। अतः वर्तमान पुष्य नक्षत्र से गणना करने पर अश्विनी नक्षत्र तक २१ अन्तर्भोग तथा वर्तमान भरणी नक्षत्र का १०।४८ गत प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार सूर्यनक्षत्र का अन्तर भाग ज्ञात करने के लिए यदि पञ्चमी रविवार को ४९।८ के समय स्वातीनक्षत्र पर सूर्य आवे और अग्रिमपक्ष की ४ चतुर्थी रविवार को ६।३२ तक रहे। तो सूर्य का भयात दिनादिक २।०।१३ तथा

भभोग दिनादिक १३।१७।२४ होगा। अतः पहले भभुक्त लाने के लिए भभोग के विपल पिण्ड ४७८४४ से भयात के षष्टि गुणित विपल पिण्ड ४३२७८० में भाग दिया तो ९।३ भभुक्त नाड़ी प्राप्त हुई। इसे ९ से गुणा किया तो ९।३ × ९ = ८१।२७ इसमें २० का भाग दिया तो ४ लब्धि तथा १।२७ शेष आया। स्वाती से चौथा ज्येष्ठा नक्षत्र का अन्तर भाग जो १३।१७।२५ घट्यात्मक है समाप्त होकर वर्तमान मूल नक्षत्र में १।२७ गत हुआ है। इसी प्रकार मंगल आदि का भी सूक्ष्म नक्षत्रों का मान लाया जाता है।

राहुकालानलचक्रम्—

> पक्षो जीवोवलितगतिना राहुणेतोडुलोका-
> गम्योऽस्तस्तद्युतमुडुशयं कर्त्तरीग्रस्तसंज्ञे।
> स्थायीनोयाय्युडुपतिरिमौ जोवगौतज्जयाय
> प्रेताज्जग्धंकिमपितुवरं कर्त्तरी जग्वतश्च ॥ ३६ ॥

अन्वयः—वलितगतिना राहुणेतोडुलोका जीवो पक्षो। गम्योऽतः (पक्षः) तद्युतमुडुशयं कर्तरी ग्रस्तसंज्ञे (भवतः)। इनः स्थायी, उडुपति यायी इमौ जीवगौतज्जयाय भवति। प्रेताज्जग्धं किमपितुवरं जग्धतश्च कर्त्तरी संज्ञम्।

विजया—वलिता विपरीता वक्रा गतिर्यस्य तेन वलितगतिना राहुणा, इता भुक्ता ये उडूनां नक्षत्राणां लोका त्रयोदश जीवपक्षः। राहुणा भुक्तत्रयोदशनक्षत्राणि जीवपक्षसंज्ञानि स्युरित्यर्थः। गम्यस्तु त्रयोदशनक्षत्रात्मकः द्वितीयः पक्षः अस्तसंज्ञकः मृतसंज्ञको वा ज्ञेयः। तेन राहुणा युतमुडु नक्षत्रं कर्तरीसंज्ञकम्। शयं पंचदशं नक्षत्रं तु ग्रस्तसंज्ञं स्यात्। इनः सूर्यः स्थायी स्थायिनोविजयाय एवं उडुपतिश्चन्द्रः यायी यायिनो विजयार्थं स्यादित्यर्थः। इमौ सूर्यचन्द्रौ जीवपक्षे गतौ तयोः स्थायियायिनोः क्रमाज्जयाय भवतः। धीघ्नाभेत्यादि पूर्वोक्त विधिनानीतयोस्तन्नक्षत्रस्थितरविन्द्वोस्तु तत्कालं जयपराजयज्ञानम्। प्रेतान् मृतनक्षत्रात् जग्धं ग्रस्तं पंचदशं नक्षत्रं किञ्चित्श्रेष्ठम्। जग्धात् ग्रस्तात् कर्तरीसंज्ञं राहु भुज्यमानं भं नक्षत्रं श्रेष्ठमित्यर्थः।

भाषा—राहु जिस नक्षत्र पर हो उसे छोड़कर विलोम गणना से १३ नक्षत्र जीवपक्ष के तथा क्रम गणना से आगे के १३ नक्षत्र मृतपक्ष के कहे गये हैं। राहु से युक्त नक्षत्र को कर्तरी तथा उससे १५ वां नक्षत्र ग्रस्तसंज्ञक होता है। इनमें से

जीवपक्ष के नक्षत्रों में सूर्य हो तो स्थायी और चन्द्रमा हो तो यायी की विजय होती है। शेष मृत ग्रस्त और कर्तरी में से मृत से ग्रस्त उत्तम तथा ग्रस्त से कर्तरी उत्तम होता है।

उदाहरण—माना राहु अश्विनी नक्षत्र पर है, ज्येष्ठा पर चन्द्रमा और श्लेषा पर सूर्य है। अतः अश्विनी नक्षत्र पर राहु के होने से कर्त्तरी संज्ञक और भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा ये १३ नक्षत्र क्रम गणना से भुक्त नक्षत्र होने के कारण जीवपक्ष के हैं। तथा रेवती, उ० भा० पद, पूर्वाभाद्र पदा, शतभिषा, धनिष्ठा, श्रवण, अभिजित, उत्तराषाढ़ा, पूर्वषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, और विशाखा ये १३ नक्षत्र भोग्यनक्षत्र होने से मृतपक्ष के हैं। तथा स्वाती १५वां नक्षत्र होने के कारण ग्रस्तसंज्ञक होगा। अतएव इस उदाहरण से ज्येष्ठा नक्षत्र पर होने के कारण चन्द्रमा मृतपक्ष का तथा श्लेषानक्षत्र पर होने के कारण सूर्य जीवपक्ष का है अतः स्थायी की विजय होगी।

'धीष्ण्याभभुक्त" इत्यादि के द्वारा इसी दिन यदि ज्येष्ठानक्षत्र में जीवपक्ष का अन्तर भोग प्राप्त हो जाय तो यायी की विजय होगी। जैसे—इसी दिन १५।२२ इष्टकाल पर ज्येष्ठा नक्षत्र में १७ अन्तरभोग व्यतीत हो जाने से ज्येष्ठा से पुनर्वसु तक १७ अन्तरभोग के बाद वर्तमान पुष्य का भोग है और पुष्य जीवपक्ष का है अतः १५।२२ के समय यायी की विजय होगी।

राहुकालानलचक्रम्

अश्विनी कर्तरी　　　　स्वातिग्रस्त

भ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	म	पूफा	उफा	ह	चि	भुक्त
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	संख्या
रे	पूभा	उभा	श	ध	श्र	अ	उषा	पूषा	मू	ज्ये	अनु	वि	भोग्य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	संख्या

नामनक्षत्रज्ञानायावकहडाचक्रम्—

शुण्ठी कोष्ठेषु तिर्यक् स्ववकहडलिखाधः स्थितालीष्विदाद्यै-
स्तान्युक्तैस्तैः स्वरैश्च क्रमत इह कुयुग्घंङछो मध्यकोष्ठे।

घेर्घैरूर्ध्वाधरालीष्वनलभत इहासार्पमणैर्भपादा·
एवं चान्येषु दद्यान्मटपरतपुयुक् शणठा मध्यकोष्ठे ॥ ३७ ॥

पितृभत इति भानि चाद्रिदेवं नयभजरवाश्च तथा भुयुग्वफढः ।
हृरिभमवधिरत्रमेत्रतः स्युर्गसदचला वसुभाद्द्युक्थझात्रः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—शुष्ठीः पञ्चविंशतिः, शुण्ठीकोष्ठेषु पञ्चविंशतिकोष्ठेषु तिर्यक् मार्गेण अ व क ह ड इति पञ्चवर्णान् विलिख्य तदधः स्थित पंक्तिषु पूर्वोक्त पञ्च स्वराणां समावेशो कर्त्तव्यः । पञ्चविंशतिकोष्ठानां मध्ये कुयुक् घ ङ छा लेख्याः । इकाराद्यैः स्वरैः तेषां वर्णानां संयोगः कथं भवेदिति ज्ञानार्थमाह—अ व क ह ड एतेषु इकार संयोगेन इ वि कि हि डि भवेत् । एवम् उकार संयोगेन उ वु कु हु डु भवेत् । एकार संयोगेन ए वे के हे डे एवं ओकार संयोगेन ओ वो को हो डो भवेत् एवं पञ्चविंशति कोष्ठेषु वर्णाः विलिख्यः मध्य कोष्ठे यत्र कु वर्तते तत्रैव घ ङ छ लेख्याः । घैर्घश्चतुर्भिश्चतुर्भिर्वर्णैः अनलभतः कृतिकानक्षत्रतः आसार्प श्लेषापर्यन्त-मित्यर्थः भपादा नक्षत्रचरणाः भवन्ति । यथा अ पङ्क्तौ अधः क्रमेण अ इ उ ए कृतिकापादाः, अग्रे च क्रमगणनया ओ वा वि वु रोहिणीपादाः, वे वो का की मृग· शिरापादाः, कु घ ङ छ आर्द्रापादाः, के को हा ही पुनर्वसु पादाः, हु हे हो डा पुष्यपादाः डि डु डे डो श्लेषानक्षत्रस्य च पादाः चरणाः भवन्ति । अनेनैव प्रकारे-णापर पंचविंशति कोष्ठेषु म ट प र त ततो न य भ ज ख ततः ग स द च ल एतान् वर्णान् स्वरसहितान् विलिख्य, द्वितीय कोष्ठस्य मध्ये ष ण ठ, तृतीये थ फ ढ तथा च तृतीय पञ्चविंशति कोष्ठमध्ये थ फ ढ स्थाप्यम् अनेन अ व क ह डा चक्रं निर्मीयते ।

भाषा—६ उर्ध्वाधर तथा ६ आड़ी रेखाओं के खींचने से २५ कोष्ठक का चक्र बन जाता है । इस प्रकार चार कोष्ठक चक्र बनालें । प्रथम कोष्ठक में ऊपर क्रमशः अ व क ह ड इन ५ वर्णों को लिखकर इनके नीचे इ उ ए ओ इनको व्यञ्जनों से युक्त कर रक्खें तथा मध्य के कोष्ठक में कु के साथ घ ङ छ भी लिखे । इस तरह प्रथम कोष्ठक चक्र बनेगा । दूसरे कोष्ठक चक्र में म् ट् प् र् त् को लिखकर अ इ उ ए ओ इन पंचस्वरों से युक्त करें तथा मध्य के कोष्ठ में पु के

साथ ष ण ढ लिखे, तीसरे कोष्ठक चक्र में न् य् भ् ज् ख् को पंचस्वरों से युक्त कर मध्य में भु के साथ ध फ ढ तथा चतुर्थ कोष्ठक चक्र में ग् स् द् च् ल् को लिखकर पंचस्वरों से युक्त कर मध्य में दु के साथ थ झ ञ लिखे इस प्रकार चार कोष्ठक चक्रों के अन्तर्गत १०० कोष्ठकों में कुल ११२ नक्षत्र चरणों का समावेश हो जायेगा। प्रथम चक्र में कृतिका से श्लेषा तक ७ नक्षत्रों के २८ चरण। द्वितीय चक्र में मघा से विशाखा पर्यन्त ७ नक्षत्रों के २८ चरण। तृतीय चक्र में अनुराधा से श्रवण तक अभिजित के साथ ७ नक्षत्रों का २८ चरण तथा चतुर्थ

अबकहडाचक्रम्

अ १	व २	क ३	ह ३	ड ४पु०	म १	ट २	प ३	र ३	त ४स्वा
इ २	वि २	कि ४ मृ०	हि ४ पु०	डि १	मि २	टि ३	पि ४ उ	रि ४चि	ति १
उ ३	वु ४ रो.	कु घ ङ छ आ १-४	हु १	डु २	मु ३	टू ४ पू	पु ष ण ठ ह १-४	रु १	तु २
ए ४ कृ०	वे १	के १	हे २	डे ३	मे ४ म	टे १	पे १	रे २	ते ३
ओ १	वो २	को २	हो ३	डो ४श्ले.	मो १	टो २	पो २	रा ३	तो ४वि
न १	य २	भ ३	ज ३	ख ४ऽभि.	ग १	स २	द ३	च ३	ल ४ऽश्वि
नि २	यि ३	भि ४मू.	जि ४ उ.	खि १	गि २	सि ३	दि ४ पू.	चि ४ रे.	लि १
नु ३	यु ४ज्ये.	भु ध फ ढ १-४ पू	जु १	खु २	गु ३	सु ४ श	दु थ झ ञ उ १-४	चु १	लु २
ने ४ ऽनु	ये १	भे १	जे २	खे ३	गे ४ ध	से १	दे १	चे १	ले ३
नो १	यो २	भो २	जो ३	खो ४ श्र.	गो १	सा २	दो २	चो ३	लो ४ भ.

चक्र में धनिष्ठा से भरणी तक ७ नक्षत्रों के २८ चरण हो जायेगा। जु जे जो ख यह अभिजित के चार चरण होते हैं।

नोट—पञ्चाङ्गों में अभिजित नक्षत्र का कोष्ठक तथा उसके जु जे जो ख इन चार चरणों का उल्लेख नहीं किया जाता है किन्तु स्वरशास्त्रों में इसका महत्व अधिक माना गया है। यह अभिजित नक्षत्र उत्तराषाढ़ा के उत्तरार्द्ध तथा श्रवण के पूर्वार्द्ध के योग से वनता है। इस अ व क ह डा चक्र के द्वारा राशि नाम का ज्ञान किया जाता है।

उदाहरण—इस चक्र में कृतिका से लेकर अ ई ऊ ए भरणी पर्यन्त कुल सौ कोष्ठकों में ११२ नक्षत्र चरण अभिजित नक्षत्र के साथ दिए गए हैं। तथा नक्षत्र चरणों के पास स्पष्ट ज्ञान के लिए १, २, ३, ४ इत्यादि दिया गया है। जहाँ नक्षत्र पूरा होता है वहाँ चार अंक हैं तथा उसी के साथ नक्षत्र का नाम भी लिख दिया गया है। जैसे अ के साथ १ इ के साथ २ उ के साथ ३ और ए के साथ ४ का अंक देकर उसके साथ कृ अर्थात् कृतिका नक्षत्र दिया गया है। इसी प्रकार आगे के कोष्ठकों में भी समझना चाहिए। यदि किसी का जन्म कृतिका नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ है तो उसका नाम अच्युत अर्जुन अरिमर्दन आदि हो सकता है। तथा यदि किसी का नाम अच्युत है तो कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में मेष राशि में जन्म हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

॥ इति समरसारे नाम नक्षत्रज्ञानादि प्रकरणम् ॥

हंसचारोक्तिपूर्वकम् स्वरवलज्ञानमाह—

नागैर्नीचैर्निधिज्ञाश्रयनशुकमितैः श्वासपर्य्यायकैर्वा
त्यभ्रं वातोऽनलोम्बुक्षितिरपृथगुपर्यन्तराधोप्यृजुत्वे।
व्यत्यासाच्चावनीतोहृदयकमलजे पत्रएकत्रतेन
श्वासानानाधिसंख्या ननरसकमलेऽहर्न्निशोस्त्रीभ्रमोऽत्र ॥ ३९ ॥

अन्वयः—नागैर्नीचैर्निधिज्ञाश्रय वात अयनशुकमितैः श्वासपर्यायकैः अभ्रं अनलोम्बु क्षितिरपृथगु पर्यन्त राधो पृजुत्वे वाति अवनीतः व्यत्यासात् हृदय कमलजे एकत्र पत्र तेन नानाधिसंख्या श्वासा कमले नन रस भ्रमो अहर्निशो अत्र त्रि (त्रिवारमित्यर्थः)।

विजया—अष्टदल हृदयपद्मे एकैकस्मिन् पत्र दलार्धत्वात् षोडश भागाः भवन्ति। तत्र पूर्वदिशातः एकतरार्धे मूलमारभ्य नागैः त्रिशद्भिः श्वासपर्यायकैः अभ्रं आकाशतत्वं वहति। पुनः नीचैः षष्टिसंख्यैः उपरि उर्ध्वं वातोः वायुतत्वं वाति चलति। तदूर्ध्वं निधिमितैः नवति संख्यैः श्वासपर्यायकैः अनलः अग्नितत्वं तिर्यग् रूपेण वाति चलति। पुनः स्वाश्रयः विंशत्यधिकशतमितैः अधोभागे अम्बुतत्वं जलतत्वं चलति। पुनः अयनशुकमितैः पञ्चाशदधिकशतमितैरित्यर्थः ऋजत्वेन शुद्धमार्गे सति भूमितत्वं वाति चलति। पुनः इतरार्धे पत्राग्रात् आरभ्य अवनीतः आकाशपर्यन्तं तदधः क्रमेण आकाशपर्यन्तं पंचतत्वानि श्वासरूपेण प्रचलन्ति। कमलदलस्य पंचतत्वानां वायु चलनेन ९०० संख्या श्वासपर्यायाः एकस्मिन् पत्रे भवन्ति। तदा सम्पूर्णे अष्टदले कमले ननरसि संख्या ७२०० द्विसप्ततिशत संख्या श्वासपर्यायाः भवन्ति। एकैकस्मिन् पत्रे सार्धद्वयघटिकायाः तत्वानि प्रचलन्ति। एवं अष्टसु पत्रेसु ८+२½=२० विंशति घटिकाः भवन्ति एवं अहर्निशो। दिन-

रात्रयो: त्रि भ्रमो भवति विंशति घटिकाभि: त्रिवारं भ्रमो बोधव्य:। एवं अहोरात्र त्रिवारभ्रमणेन नि:श्वास संख्या २१६०० नि:श्वासमिता षष्टिघटिका: ज्ञातव्या:। उक्तञ्च—'एकविंशति सहस्राणि षट्शतानि तथोपरि। हंसहंसेति हंसेति जीवो जपति नित्यश: ॥'
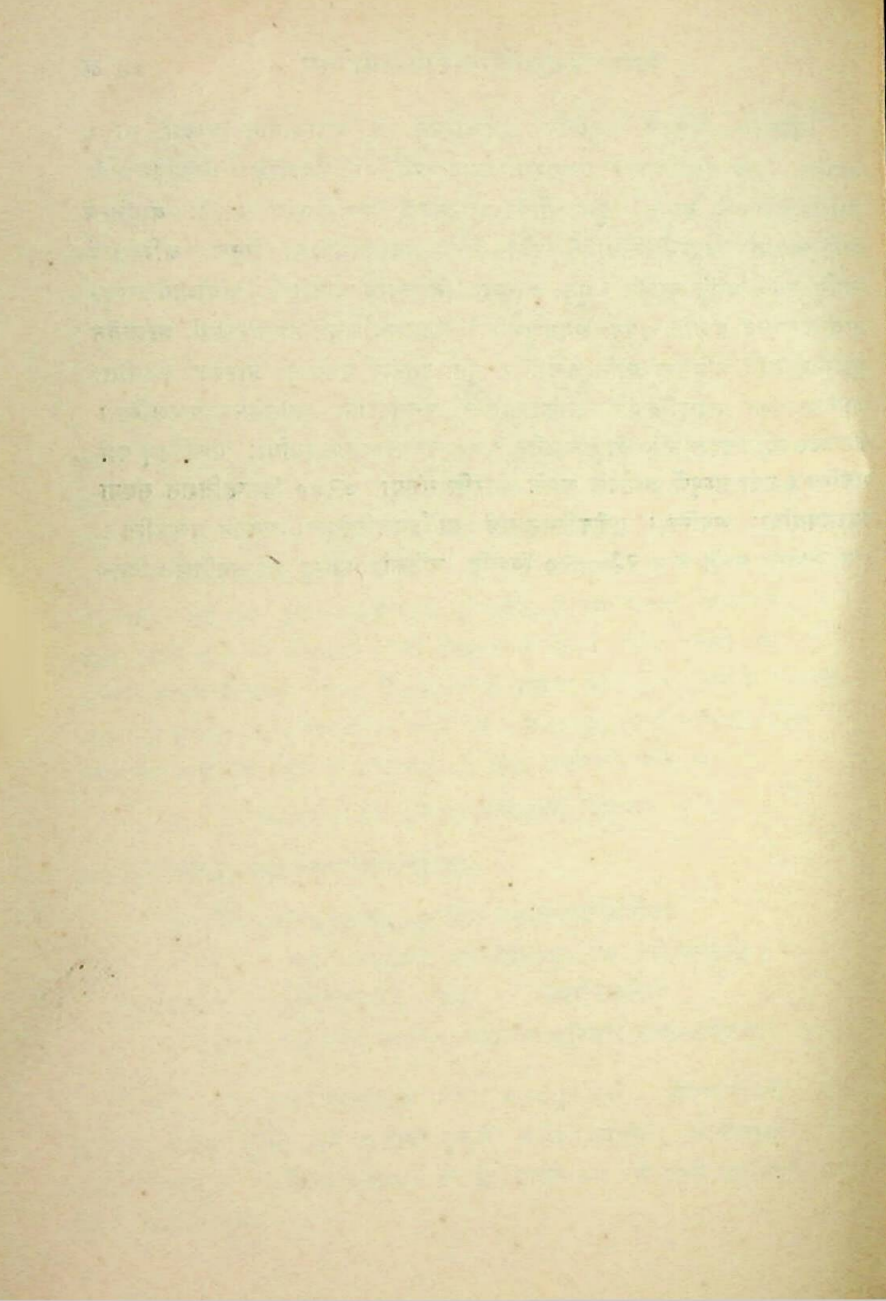
भाषा—हृदय को अष्टदल कमल के रूप में माना गया है और प्रत्येक पत्र के वाम-दक्षिण क्रम से दो-दो विभाग किया गया है। पूर्वादि दिशा के क्रम से प्रथम पत्र में मूल से ३० श्वास पर्यन्त नासिका रन्ध्र से आकाशतत्व चलता है, फिर ६० श्वासपर्यन्त ऊपर की ओर वायुतत्व, उसके बाद ९० श्वास तक तिर्यग् रूप से अग्नितत्व, फिर १२० श्वास पर्यन्त अधोरूप से जलतत्व, तदनन्तर १५० श्वास पर्यन्त सरल मार्ग से पृथ्वीतत्व चलता है। इसका क्रम मूल से अग्रभाग और अग्रभाग से मूल की तरफ विपरीत होकर चलता है। स्पष्टी के लिए चक्र देखें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँचों तत्व आठो पत्रों पर उर्ध्वाधः क्रम से विलोम विधि से चलते हैं। इसमें एक पत्र की श्वास संख्या ९०० तथा आठों पत्रों की श्वास संख्या ७२०० अर्थात् २० घड़ी होती है। तथा दिन-रात्रि में इनका कुल तीन आवर्तन होता है। अतः २४ घण्टे या ६० घड़ी में कुल श्वास संख्या २१६०० होती है।

नरपतिजयचर्यायाम्—

टिप्पणी—पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
मध्ये पृथ्वी अधश्चाप ऊर्ध्वं वहति चानलः ॥ १ ॥
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे।
वामे वा दक्षिणे वापि धराष्टांगुलदीर्घिका ॥ २ ॥
षोडशांगुलमापः स्युस्तेजश्च चतुरंगुलम्।
द्वादशांगुलदीर्घः स्याद्वायुर्व्योमांगुलेन हि ॥ ३ ॥
पृथ्वी पीता सितं वारि रक्तवर्णो धनंजयः।
मारुतो नीलजीमूत आकाशो वर्णपंचकः ॥ ४ ॥
पृथिव्यापि त्रितत्वेन दिनमासाब्दकैः फलम्।
शोभनं च तथा दुष्टं व्योम मारुत वह्निभिः ॥ ५ ॥

पृथ्वी जले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामुभौ हि व्योममारुतौ ॥ ६ ॥
पार्थिवे सततं युद्धं सन्धिर्भवति वारुणे ।
विजयो वह्नितत्त्वेन वायौ भंगो मृतिस्तु खे ॥ ७ ॥
हंसचारस्वरूपेण येन ज्ञानं त्रिकालजम् ।
पंचतत्त्वेषु भेदोऽयं कथितः पूर्वसूरिभिः ॥ ८ ॥

इन सबका आशय यह है कि पंचभूतात्मक मनुष्यशरीर के हृदय में आठ पत्रों का एक कमल होता है। उस कमल के आठों पत्रों पर उपरोक्त क्रमानुसार सदैव दिन-रात वायु चलता रहता है। उस वायु में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश यह पाँचों तत्व उपरोक्त नियमानुसार चलते रहते हैं और इनके संचालन से सब प्रकार का शुभाशुभ फल विदित होता है। किंतु शोचनीय स्थल है की इनका संचालन कैसे विदित हो सकता है। यदि प्रातःकाल से गतकाल का हिसाब लगाकर केवल उसी के अनुसार तत्व संचालन मान लिया जाय तो वास्तविक तत्त्वज्ञान असंभव प्रतीत हो सकता है। अतएव वास्तविक तत्त्वज्ञान के निमित्त 'मध्ये पृथ्वी अधश्चापः।' 'धराष्टांगुलदीर्घिका' इत्यादिक उपायों का आश्रय लेना समुचित है। यद्यपि बहुतकाल तक स्वराभ्यास किए बिना सम्यक् तत्वज्ञान नहीं होता है तथापि जब यह निश्चय है कि हृदयकमल पर भ्रमण करनेवाला वायु नासिका के वाम या दक्षिण किसी भी एक छिद्र से बाहर निकलता रहता है और इसी से तत्वज्ञान किया जा सकता है। तब इस काम के लिए उपरोक्त यह युक्तियाँ बहुत ही उपयोगी हैं कि नासिका के दक्षिण वा वाम किसी भी छिद्र से निकलता हुआ वायु (श्वास) यदि छिद्र के बीच से निकलता हो तो पृथ्वी तत्व चलता है। यदि छिद्र के अधोभाग से अर्थात् ऊपरवाले ओष्ठ को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो जलतत्त्व चलता है। यदि छिद्र के ऊर्ध्वभाग को स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो अग्नितत्व चलता है। यदि छिद्र से तिर्छा होकर निकलता हो तो वायुतत्व चलता है और यदि एक छिद्र से बढ़कर क्रम से दूसरे से निकलता हो तो आकाश तत्त्व चलता है ऐसा जानना चाहिए।

अथवा सोलह अंगुल का एक शंकु बनाकर उस पर ४ अंगुल, ८ अंगुल, १२ अंगुल और १६ अंगुल के अन्तर पर रूई वा अत्यन्त मन्दवायु प्रहार से हिल सके

ऐसा और कुछ पदार्थ लगा के उस शंकु को अपने हाथ में लेकर 'नासिका के दक्षिण वा वाम किसी भी छिद्र से श्वास चल रहा हो उसके समीप लगाकर के तत्व की परीक्षा करें। यदि आठ अंगुल तक वायु बाहर जाता हो तो पृथ्वीतत्व समझना चाहिए। यदि १६ अंगुल तक वायु बाहर जाता हो तो जलतत्व समझना चाहिए। यदि चार अंगुल तक वायु बाहर जाता हो तो अग्नितत्व समझना चाहिए। यदि १२ अंगुल तक बाहर जाता हो तो वायुतत्व समझना चाहिए यदि अंगुल प्रमाण न हो तो आकाश तत्व समझना चाहिए। इस प्रकार तत्व संचालन विदित करके शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

प्रागादि दिग्पत्रगामिनी प्राणवायौ यादृक् चित्तवृत्तिस्तामाह—

इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वसने रणाय
भोक्तुं रुषेऽथ विषयाय मुदे गमाय।
चेतोभवेत् कृपयितुं च नृपास्पदाय
पत्रद्वयान्तरचरे तु मुदे परस्मै ॥ ४० ॥

अन्वयः—इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वसने रणाय भोक्तुं रुषेऽथ विषयाय मुदे गमाय कृपयितुं च नृपास्पदाय चेतो भवेत् पत्रद्वयान्तरचरे तु परस्मै मुदे (चेतो भवेत्)।

विजया—इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वसने पूर्वं पत्रश्वसने वायौ चरति सति मनो रणाय भवेत्, अग्निकोणे वायौ चरति सति भोक्तुं मनो भवेत्। दक्षिणपत्रे वायौ चरति रुषे क्रोधाय च मनो भवेत्। नीरितीकोणे वायौ चरति विषयभोगाय मनो भवेत्। वायुकोणपत्रे वायौ चलति सति गमाय गमनाय मनो भवेत्, उत्तरपत्रे वायौ चलति सति कृपयितुं कृपां कर्तुं मनो भवेत्, एवं ईशानकोणे वायौ चलति चेत् तदा नृपास्पदाय मनो भवेत्, पत्रद्वयान्तरचरे द्वयोः पत्रयोर्मध्ये वायौ चरति (चलति) तदा परस्मै मुदे मोदाय सन्तोषाय च मनो भवेत्, एवं सन्ध्यै चेत् सर्वत्र परस्मै ज्ञेयः। प्राणवायौ साधने गुरूपदेशादेव समारम्भो कार्यः।

भाषा—पूर्वादि आठों दिशाओं के पद्मपत्र पर श्वास-प्रश्वास के चलने का फल क्रमशः कह रहे हैं। यथा अष्टदल कमल के पूर्व पत्र में वायु चलता हो तो संग्राम के लिए मनोवृत्ति बढ़ती है। अग्निकोण में अग्निकोण के पत्र पर वायु चलता हो तो भोजन की इच्छा होती है। दक्षिण पत्र पर वायु के चलने से क्रोध होता है, इसी प्रकार नैर्ऋत्य कोण के पत्र पर वायु चलता हो तो विषयभोग की

इच्छा बढ़ती है। पश्चिम पत्र पर वायु चलता हो तो आनन्द की इच्छा होती है। वायु कोण के पत्र पर चलता हो तो गमन करने की इच्छा होती है। तथा उत्तर के पत्र पर वायु चलता हो तो कृपा करने की इच्छा होती हैं तथा ईशान कोण पर वायु चलता हो तो राज्य-प्राप्ति की कामना होती है। दो पत्रों के बीच में वायु चलता हो तो परमानन्द की प्राप्ति की इच्छा होती है।

स्फुटार्थं स्वरबलज्ञानार्थं चक्रम्
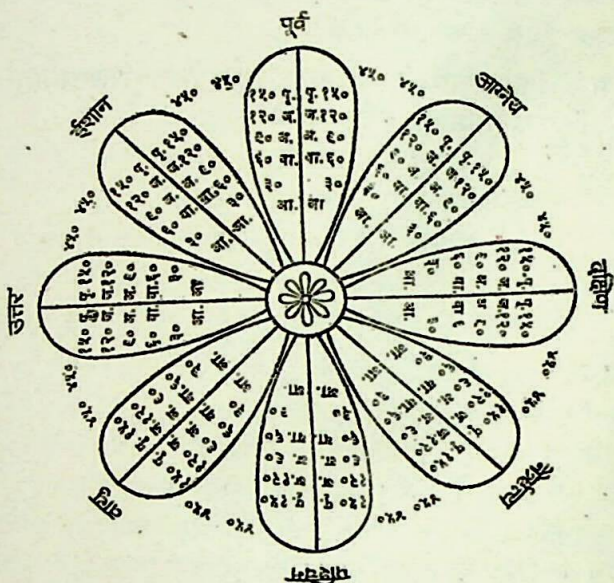
पृथिव्यादितत्त्ववहनवाहनफलमाह—

> धराम्बुनी शुभे महो विमिश्रितं फलं भवेत्।
> मरुन्नभश्च दुःखदे मते स्वरार्थवेदिभिः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—स्वरार्थवेदिभिः धराम्बुनि शुभे महो दुःखदे मते विमिश्रितं फलं भवेत्।

विजया—स्वरार्थवेदिभिः स्वरशास्त्रज्ञैरित्यर्थः मते बुद्धौ धराम्बुनि तत्वे पृथिवी जलतत्वे शुभौ भवतः महः अग्नि तत्वे चलने सति फलं विमिश्रितं भवेत्।

मरुद् वायु तत्वं नभश्च आकाशतत्वं एते द्वे तत्वे दुःखदे मते इष्टे कथिते इत्यर्थः, स्वरार्थवेदिभिः स्वराणां अर्थं तात्पर्यं विदन्ति जानन्ति तैरित्यर्थः ।

भाषा—पृथिवी और जलतत्व में शुभ फल होता है, अग्नि तत्व में शुभ अशुभ मिला हुआ फल होता है और वायु तथा आकाश तत्व दुःखदायी होता है । यह स्वरशास्त्र के तात्पर्य जानने वाले विद्वानों का मत है ।

हृत्कमलपत्रेषु रविचन्द्रवहनकथनपूर्वकं प्राणवायुसंचारेऽर्धघटचादि ज्ञानमाह–

द्वे द्वे पत्रे इनेन्दू वहत इह तयोः पञ्च पञ्चेति घटचो
नाकी गुर्वक्षरोक्त्याऽसुरथ च नतलासुर्घटी कथ्यतेत्र ।
शुक्लादित्रित्रिघस्रैर्हिमगुरथ रविः प्रत्युषश्चेत् प्रवृत्तः
श्रेयः स्यादेकनाडचां यदि वहति शिखी पञ्चघस्रैर्मृतिः स्यात् ।४२।

अन्वयः—इनेन्दू द्वे द्वे पत्रे वहतः इह तयोः पञ्च पञ्चेति घटचो नाकीगुर्वक्षरोक्त्या असुरथ च नतलासुर्घटी अत्र कथ्यते । शुक्लादित्रिघस्रैर्हिमगुरथरवि प्रत्युषश्चेत् प्रवृत्तः श्रेयः स्यात् यदि एकनाडचां शिखी वहति पञ्चघस्रैः (तदा) मृतिः स्यात् ।

विजया—इनेन्दू इनश्च इन्दुश्च इनेन्दू सूर्यचन्द्रौ इत्यर्थः । अत्र सूर्यतः दक्षिणचन्द्रेण वामस्वरस्य बोधो जायते प्रत्येके सूर्यचन्द्रौ इत्यर्थः । हृत्कमलदले द्वे द्वे पत्रे अभिव्याप्य वहतः, इह अत्र तयोः पत्रयोः सूर्यचन्द्रवहनात् पञ्च पञ्च घटयः भवन्ति । नाके गुर्वक्षरोक्त्याः=दश गुर्वक्षरोक्त्या, दश गुर्वक्षरोच्चारणैः एकाः असुः प्राणः, जायते, स्व एव कालरूपो भवति, अथ च नतलासुः षष्ठ्योत्तरत्रिशत् प्राणपरिमाणैः एकाः घटीः जायते । अत्र अस्मिन् शास्त्रे नतलासुर्घटी कथ्यते । शुक्लादि=शुक्लपक्षमारभ्य त्रित्रिघस्रैः प्रतिपदादिभिः त्रिभिः त्रिभिः घस्रैः दिनैरित्यर्थः । हिमगुः=चन्द्रः, अथ=अनन्तरं, रविः=सूर्यः प्रत्युषः=प्रातःकाले पञ्चघटिर्वहति । एवं क्रमेण अहोरात्रं सूर्यचन्द्रनाडीनां ज्ञानं भवति । पश्चात् चतुर्थ्यादि त्रिदिनैः रविः प्रातः तावती काले वहति । अर्थात् प्रतिपदा द्वितीया तृतीया तिथिषु प्रथमः चन्द्र तदनन्तरं सूर्य नाड़ी दिनत्रयं क्रमेण वहति तदनन्तरं चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी त्रिदिनैः रविः प्रातः पञ्चघटी तदनन्तरं इन्दुः=चन्द्रः पञ्चघटी

वहति एवं कृष्णपक्षे प्रतिपदादि त्रिदिनैः अर्कः तदनन्तरं इन्दुः क्रमेण वाति एवं उक्तेषु स्व स्वदिनेषु शशिः रव्यादिषु सोमो रविश्च प्रत्युषः=प्रातःकाले प्रवृत्तः स्यात् तदा श्रेयः[१] कल्याणं भवति । यदि एकस्यां नाड्यां चान्द्रयाम् सौर्य्याम् वा यदि शिखी वह्नि तत्वं पञ्चघस्रै पञ्चदिनैः वहेत् तदा मृत्युं[२] विजानीयात् ।

भाषा—पूर्वोक्त अष्टदल कमल के दो-दो पत्रों पर सूर्य और चन्द्रमा पाँच-पांच घटी पर्यन्त चलते हैं । सूर्य से दक्षिण स्वर और चन्द्रमा से वाम स्वर समझना चाहिए । दक्षिण नाड़ी के एक-एक पत्र में अढ़ाई-अढ़ाई घटी दोनों पत्रों पर पांच घटी सूर्य चलता है और वाम नाड़ी के दोनों पत्रों में अढ़ाई-अढ़ाई घटी के हिसाव से पांच घटी चन्द्रमा चलता है । तदनन्तर उसी क्रम से पांच घटी सूर्य और पांच घटी चन्द्रमा चलता है इस विधि से २० घटी में सम्पूर्ण चक्र में रात-दिन में तीन वार भ्रमण होता है । यहाँ पर एक घटी का प्रमाण १० बार एक गुर्वक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है उतने समय को एक असु प्राण या श्वास कहते हैं और ३६० श्वास जितनी देर में चलता है उसे एक घटी कहते हैं । इस प्रकार घटी के क्रम से पांच-पांच घटी में सूर्य (दक्षिण स्वर) चन्द्र (वाम स्वर) चलता है । शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से तीन दिन तक पहले चन्द्रमा, बाद में सूर्य तथा तीन दिन के बाद चौथी पंचमी षष्ठी तक पहले सूर्य

---

१. नरपतिजयचर्यायाम्—
यात्रा काले विवाहे च वस्त्रालंकार भूषणे ।
शुभकर्मणि संधौ च प्रवेशे च शशी शुभ. ॥ १ ॥
विग्रहे द्युतयुद्धेषु स्नानभोजनमैथुने ।
व्यवहारे भये भगे भानुनाड़ी प्रशस्यते ॥ २ ॥

२. स्वरोदये—आदौ चन्द्र सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपद्युदितोऽहानि त्रीणि त्रीणि क्रमोदयः ॥ १ ॥
चन्द्रोदये यदा सूर्यश्चन्द्रः सूर्योदये यदा ।
अशुभं हानिरुद्वेगः तद्दिने जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥
शशाङ्कं चारयेद्रात्रौ दिवाचार्यो दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥ ३ ॥ इति ॥
—नरपतिजयचर्या हंसचाराध्याय श्लोक सं० १५-१८

तदनन्तर चन्द्रमा चलता है तथा कृष्णपक्ष में प्रतिपदादि तीन तिथियों में पहले सूर्य इसके बाद चन्द्रमा चलता है। इसे चक्र द्वारा स्पष्ट समझें। यदि चन्द्र और सूर्य नाड़ी इसी क्रम में नियमित अपने समय के अनुसार चलें तो कल्याण कारक होते हैं। यदि पाँच दिन तक एक ही नाड़ी में अग्नि तत्व चले तो मृत्यु होती है।

विशेषः—(शुक्लपक्षे)

प्रतिपत्त्रिषु चंद्रस्य चतुर्थ्यास्त्रिषु भास्वतः।
सप्तम्यादित्रिषु विधोर्दशम्यास्त्रिषु भास्वतः॥ १॥
ततस्त्रिषु विधोः प्राक्स्यादुदयः स्वेरवेरपि।

(कृष्णपक्षे)

प्रतिपत्त्रिषु सूर्यस्य चतुर्थ्यास्त्रिषु चन्द्रमाः॥ २॥
सप्तम्यादित्रिषुरवेर्दशम्यास्त्रिषु चन्द्रमा।
ततस्त्रिषु रवेः प्राक्स्यादुदये स्वे शुभे इमौ॥ ३॥

प्रतिपत्प्रभृतिरेव ज्ञेयः।

पंचपंचघटीमानादेकैकस्य ह्यियो भवेत्।
आदौ चन्द्रस्ततस्सूर्यस्सितेऽन्येऽर्कस्ततो विधुः॥ ४॥

सूचना—इस प्रकरण में जो तिथि का उदय लिया गया है वह पंचांगस्थ तिथि के उदयानुसार नहीं लेना चाहिए। जिस दिन जो तिथि हो उसी को आज के प्रातःकाल से लेकर कल (आगामी) प्रातःकाल पर्यन्त मानना चाहिए। और उन्ही ६० घड़ियों में उपरोक्त नियमानुसार चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर का उदय मानना चाहिए। 'सूर्योदयादारभ्य प्रवृत्तिरुक्ता, न तिथ्युदये'।

शुक्लपक्षे चन्द्रस्वरज्ञानचक्रम्

शुक्ल	तिथि	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	पक्षे
	स्वर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	

कृष्णपक्षे सूर्यस्वरज्ञानचक्रम्

कृष्ण	तिथि	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	पक्षे
	स्वर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	

तिथयः		शुक्ले पंचघट्यात्मकस्वरचारचक्रम् ।											
प्रतिपदा	स्व.	च.	सू.	च.	सू.	च.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	च.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वितीया	स्व.	चं.	सू	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तृतीया	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्थी	स्व	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	च	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
पंचमी	स्व	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
षष्ठी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सप्तमी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अष्टमी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
नवमी	स्व.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
दशमी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
एकादशी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वादशी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
त्रयोदशी	स्व.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं,	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्दशी	स्व.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
पूर्णिमा	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

तिथयः	कृष्णे पंचघट्यात्मकस्वरचारचक्रम् ।												
प्रतिपदा	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वितीया	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तृतीया	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्थी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
पंचमी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
षष्ठी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सप्तमी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अष्टमी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
नवमी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५.	५	५	५
दशमी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
एकादशी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वादशी	स्व.	चं.	सू.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
त्रयोदशी	स्व.	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं,	सू.	च.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्दशी	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अमावास्या	स्व.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	च	सू.	चं.	सू.	च.	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

रव्यादिनाडी वहने युद्धाद्यारम्भे जयमाह—

अर्केऽग्नितत्त्ववहने हरिहेलया य-
द्येकोऽपि हन्ति सुबहून् किमुतात्र चित्रम् ।
शून्ये रिपून् स्वपृतनामपि वाहपक्षे
निक्षिप्य विक्षिपति लक्षमरीन् क्षणेन[1] ॥ ४३ ॥

अन्वय:—अर्केऽग्नितत्त्ववहने हरिहेलया यद्येकोऽपि सुबहून् हन्ति अत्र किमुत चित्रम् । शून्ये रिपून् स्वपृतनामपि वाहपक्षे निक्षिप्य क्षणेन लक्षमरीन् विक्षिपति ।

विजया—अर्के = सूर्यनाड्याम्, अग्नितत्वं = तेजतत्वम्, वहने सति हरि-हेलया = विष्णुलीलया सिंहवद् वा यदि एकोऽपि भटः योद्धा (तदा) सुबहून् योधान् हन्ति अत्र किम् चित्रम् = आश्चर्यम्, शून्ये = शून्यनाड्याम्, रिपून् = शत्रून्, निक्षिप्य = संस्थाप्य, स्वपृतनां = स्वकीयसेनाम्, वाहपक्षे = विजयपक्षे च या नाडी चलति तत्र निक्षिप्य संस्थाप्य, क्षणेन = क्षणमात्रेण, लक्षमरीन्—लक्षम् = लक्षसंख्याकं शत्रूम्, विक्षिपति = नाशयति ॥ ४३ ॥

भाषा—दक्षिणस्वर चलता हो और उसमें अग्नितत्त्व चल रहा हो तो ऐसे समय में अकेला भी लड़नेवाला, अपने प्रतिद्वन्द्वी अनेक योद्धाओं को सिंह या विष्णु की तरह लीलापूर्वक (अल्पश्रम में) मार सकता हैं, इसमें आश्चर्य नहीं है । जिस दिशा का अपना स्वर चलता हो उसी दिशा में अपनी सेना को तथा न चलनेवाले स्वर की दिशा में शत्रु सेना को करके यदि युद्ध करे तो क्षणभर में ही बहुत शत्रुओं का नाश कर सकता है ।

रव्यादिनाडीवहने प्रश्ने विशेषमाह—

प्रश्ने चन्द्रवहे तु वामगनरेणोक्ते जयो निश्चितं-
सूर्ये दक्षगतेन कृच्छ्रविजयी शून्यस्थदूते क्षतिः ।
सूर्ये चेद्विसमाक्षराणि शशिनि ब्रूते समानि ध्रुवं-
जेतासौ पुरतोपि वामग इव स्यात्पृष्ठगो दक्षिणे ॥ ४४ ॥

---

१. पूर्णनाडीगतपृष्ठे शून्यमंगं तदग्रतः ।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥
नरपतिजयचर्या अ० २, श्लोक २८ ॥

स्वर के न चलनेवाले नासिका-रन्ध्र को शून्य स्थान कहा गया है ।

अन्वय:—प्रश्ने चन्द्रवहे तु वामगनरेणोक्ते निश्चितं जयः, सूर्ये दक्षगतेन कृच्छ्रविजयो शून्यस्थदूते क्षतिः। सूर्ये चेद्विषमाक्षराणि, शशिनि (च) समानि ब्रूते (तदा) ध्रुवं असौ जेता। पुरतोऽपि वामग इव स्यात्पृष्ठगो दक्षिणः॥ ४४॥

विजया—प्रश्ने=प्रश्नकाले, चन्द्रवहे=चन्द्रनाड्यां चलने तु=इति निश्चयेन, वामगनरेण=वामभागस्थितनरेण, उक्ते=कथिते, सति निश्चितं=अवश्यमेव, जयो=विजयो भवति। सूर्ये=सूर्यनाड्यां दक्षिणस्वरस्य, वहन्त्यां सत्यां दक्षगतेन= दक्षिणभागे स्थितेन गतेन नरेण प्रश्नकृते सति कृच्छ्रविजयी = कष्टेन विजयमाप्नुयादिति। शून्यत्व = शून्यनाडीभागे स्थित्वा चेत्प्रश्नः करोति तदा क्षतिः=हानिर्वाच्या। सूर्ये सूर्यनाडीवहने सति दूतः प्रश्नकर्त्ता वा विषमाक्षराणि ब्रूते=कथयति एवं च शशिनि=चन्द्रनाड़ीवहने वामस्वरवहनकाले वा चेद् समानि अक्षराणि वदति तदा असौ जेता ध्रुवं निश्चयेन जयति। यः पुरतः अग्रतः भूत्वा प्रश्नः करोति स वामभागस्थः इति अवगम्यते। यश्च पृष्ठतः पृष्ठभागे स्थितः सन् प्रश्नः करोति स दक्षिणभागस्थ इति ज्ञातव्यः। उक्तञ्च नरपतिजयचर्यायां द्वितीयाध्याये—

> उर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथे स्थितः।
> पृष्ठे दक्षे तथाधस्तात्सूर्यवाहगतो मतः[1]॥ ३८॥
> पूर्णनाडीस्थितो ब्रूते यत्पृच्छति शुभाशुभम्।
> तत्सर्वं सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः॥ ३९॥
> सूर्यः चेद्विषमान्वर्णान् समवर्णान्निशाकरे।
> वाहस्थो भाषते दूतस्तदालाभोऽन्यथा नहि॥ ४३॥

भाषा—प्रश्नकाल में चन्द्रस्वर चलता हो और प्रश्नकर्त्ता वाम भाग में खड़े होकर प्रश्न करे तो निश्चय विजय होता है और सूर्यस्वर चलता हो तथा प्रश्न कर्त्ता दक्षिण भाग में खड़ा होकर पूछे तो कष्ट से विजय (कार्यसिद्धि) होती है। यदि शून्य भाग में होकर प्रश्न करे तो कार्य की हानि होती है। इसी प्रकार सूर्यनाड़ी के समय विजमाक्षर में तथा चन्द्रनाड़ी के समय समाक्षर में प्रश्न हो तो अवश्य ही कार्य सिद्ध होता है। जो सम्मुख हो उसे वाम तथा जो पीछे हो उसे दक्षिण भाग में समझना चाहिए॥ ४४॥

---

१. 'पृष्ठेदक्षेतथाऽधस्ताद्दक्षवाहस्थितो मतः' इति पाठान्तरम्।

विशेष—प्रश्न के समय वामस्वर चलता हो तथा वामभाग में स्थित होकर यदि प्रश्नकर्त्ता समाक्षरों में प्रश्न करता है तो अवश्यमेव विजय प्राप्त होता है अथवा कार्य की सिद्धि होती है। इसी प्रकार यदि दक्षिण स्वर चलता हो और दक्षिग भाग में स्थित होकर प्रश्नकर्त्ता विषमाक्षरों में प्रश्न करे तो अवश्य ही कार्य की सिद्धि होती है।

प्रश्ने विशेषमाह—

प्रश्नः श्वासांतरगमे चेज्जयः स्या-
द्भङ्गो निर्यात्यत्र सूक्ष्मं तदेतत्।
लाभः पुत्रादेश्च वाहस्थदूते
पृच्छत्युक्तः शून्यगे स्यादसिद्धिः॥ ४५॥

अन्वयः—चेत् प्रश्नः श्वासांतरगमे जयः स्यात् निर्याति (यदा) तदा भङ्गः स्यात्। अत्र एतत् सूक्ष्मं। वाहस्थदूते पृच्छति पुत्रादेः लाभश्च शून्यगे असिद्धिः उक्तः स्यात्।

विजया—प्रश्नकर्त्ता ज्योतिर्विद् (स्वरज्ञ) सन्निधावागत्य प्रश्नः करोति तस्मिन् काले दैवज्ञस्य=स्वरज्ञस्य वा चेत् निःश्वासः उर्ध्वगामि तदा तस्य प्रश्न-कर्त्तुः कार्यस्य। अवश्यमेव सिद्धिर्जायते चेत् निःश्वासः प्रश्नकाले वहिर्याति तदा कार्यस्य हानिर्जायते इति वाच्यं तत् एतत् विचारं सूक्ष्मं=कठिनश्चापि, पुत्रादेः लाभार्थं यदि प्रश्नकर्त्ता वाहस्थे प्रश्नः करोति तदा लाभः स्यात् यदि चेत् शून्य-स्वरे स्वरदिक् स्थित्वा प्रश्नः करोति तदा कार्यस्य हानिर्जायते।

भाषा—प्रश्नकर्त्ता जिस समय स्वरशास्त्रज्ञ के पास जाकर प्रश्नकर्त्ता है उस काल में यदि स्वरशास्त्रज्ञ ज्योदिर्विद का स्वर पूरक अवस्था में हो तो कार्य की सिद्धि होती है। और यदि रेचक अवस्था में हो तो कार्य की हानि होती है। यह फलादेश की अतिसूक्ष्म रीति है। सामान्यरूप से वाम या दक्षिण जो स्वर चलता हो उसी दिशा में खड़े होकर प्रश्नकर्त्ता यदि प्रश्न करत्ता है तो उसके अभिलषित कार्य की सिद्धि होती है। तथा जो स्वर नहीं चलता हो उसकी तरफ खड़े होकर यदि प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करें तो उसके कार्य की हानि होती है ऐसा कहना चाहिए॥ ४५॥

सूर्यचन्द्रनाडीवहने कर्तव्यकर्माण्याह—

चन्द्रे वहे नृपविलोकनगेहवेशपट्टाभिषेकमुखकर्मभवेच्छुभं यत् ।
सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धमुख्यं भवेदशुभकर्मफलाय सत्यम ॥ ४६ ॥

अन्वयः—चन्द्रे वहे नृपविलोकनगेहवेश-पट्टाभिषेकमुखं यत् कर्म शुभं भवेत् सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धं मुख्यं अशुभकर्मफलाय सत्यं भवेत् ।

विजया—चन्द्रे वामनाड़ी वहे = वहने, नृपविलोकन=राज्ञां दर्शनं, गेहवेश= गृहप्रवेशः, पट्टाभिषेक = राज्याभिषेक, मुखं = आदिकं (इत्यादि) यत् कर्म शुभं तत् शस्तं भवेत् । सौरे = सूर्यनाड़ीवहने तु = इति निश्चयेन मज्जनं = स्नानं वधूरतिः = प्रथमवध्वाः समागमः, भुक्ति = भोजनं, युद्धं = विवादादिकं एतदादिकं कर्म अशुभं सिद्धयति यत् कर्म तत् इह फलदं भवेत् । उक्तं च नरपतिजयचर्यायां—

यात्राकाले विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ।
शुभकर्मणि सन्धौ च प्रवेशे च शशीशुभः ॥ १ ॥
विग्रहे द्यूतयुद्धेषु स्नानभोजनमैथुने ।
व्यवहारे भये भङ्गे भानुनाडी प्रशस्यते ॥ २ ॥
होमश्च शान्तिकं चैव दिव्यौषधिरसायनं ।
विद्यारम्भं स्थिर कार्यं कर्तव्यं च निशाकरे ॥ ३ ॥
मारणं मोहनं स्तम्भं विद्वेषोच्चाटनंवशम् ।
प्रेरणाकर्षणं क्षोभं भानुनाड्युदये कुरु ॥ ४ ॥

नरपतिजयचर्या अ० २, श्लो० १८–२१ ॥

भाषा—वामस्वर में राजदर्शन गृहप्रवेश और राज्याभिषेकादि सभी शुभ-कार्यों की सिद्धि होती है और दक्षिणस्वर में स्नान, स्त्रीसम्भोग, भोजन और युद्ध आदि अशुभ कर्मों की सिद्धि होती है ॥ ४६ ॥

रतिविधि स्त्रीणां मुख्यं द्रावणञ्चाह—

वहति शशिनि वाश्चेदङ्गनाया नरस्य
द्युमणिमनुकृशानुस्तत्र काले रतेषु ।
स्रवति मदनवारां निर्झरं साथ पुंसा
यदि शिखिरत्ननीताशक्तिवद्भाविता स्यात् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—अङ्गनाया शशिनि वहति वाः चेद् वाति नरस्य द्युमणिमनुकृशानुः तत्र काले रतेषु सा अथ मदनवारां निर्झरं स्रवति यदि पुंसां शिखि नवनीता शक्तिवद् भाविता स्यात् ।

विजया—अङ्गनायाः = स्त्रियः शशिनि = चन्द्रनाड्यां वहति सति वाः जलतत्वं चेद् वहति एवं नरस्य पुरुषस्य द्युमणिः = सूर्यनाड़ी अनुलक्षीकृत्य कुशानुः = अग्नितत्वं चेद् वहति अर्थात् पुरुषस्य सूर्यनाड़ी वहने चेद् अग्नि तत्वं चलति तदा तस्मिन् काले रतेषु सा योषितमदनवारां कन्दर्पजलानां निर्झरं स्रवति अथ पुंसा सा योषित् नवनीताः शक्तिवद् भाविता स्यात् । अर्थात् यथा अग्निसंयोगेन नवनीतं द्रवति तथा पुंसा भाविता वशीकृता प्रसन्ना वा योषित् मदनजलानां निर्झरं स्रवति अर्थात् योषित् पराजयः बलहानिर्वा भवति । एवं पुरुषस्य जयो भवति ।

भाषा—स्त्री का वाम स्वर और उसमें जलतत्व चलता हो और पुरुष के सूर्य स्वर काल में अग्नितत्व चलता हो तो ऐसे समय में स्त्री प्रसंग करने से जैसे अग्नि सम्पर्क से नवनीत पिघलकर वह जाता है वैसे ही स्त्री पुरुष से द्रवित होकर पराजित हो जाती है । अर्थात् पुरुष विजयी होता है और स्त्री पराजित होती है ॥ ४७ ॥

विशेषः—चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर नासिका के दोनों छिद्रों में दाहिने छिद्र को दक्षिणस्वर या सूर्य स्वर और बाएँ छिद्र को वामस्वर या चन्द्रस्वर कहा गया है । जन्म से लेकर मरण पर्यन्त निरन्तर अबाधगति से सभी जीवों के वाम और दक्षिणस्वर क्रमशः चलते रहते हैं । इसका पूरा विवरण पहले हंसचार प्रकरण में दिया जा चुका है । स्वरशास्त्र के द्वारा फलादेश जितना सरल है उतना ही कठिन भी है । स्वर के द्वारा फलादेश करनेवाले ज्योतिर्विद को मिथ्याहार विहारादि दोषों से मुक्त होकर अपने को बहुत ही संयत रखने की आवश्यकता पड़ती है । मिथ्याहार-विहारादि दोषों से ग्रस्त फलादेश करनेवाला आदमी ही यदि नाक पकड़ कर सिद्धासिद्ध कहने में तत्पर हो जाय तो शास्त्र को कलंकित करने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता ।

वशीकरणमाह—

सुप्ताया निजवहदुष्णरश्मिनाड्या
चन्द्रं चेद्वहनगतं पिबेत्तदानीम् ।
आमृत्योर्वंसयति तामियं च कान्तं
चन्द्रेण द्युमणिवहं मुहुः पिबन्ती ॥ ४८ ॥

अन्वयः—निजवहदुष्णरश्मिनाड्या सुप्ताया चेद्वहनगतं तदानीं पिबेत् अमृत्योर्वशयति तामियं च कान्तं द्युमणिवहं चन्द्रेण मुहुः पिबन्ति ।

विजयाः—भर्त्ता सुप्तायाःस्त्रियः निजवहदुष्णरश्मिनाड्या स्त्रियः चन्द्रं वहनगतं चन्द्रनाड़ी वायुः तदानीं पिबेत् अर्थाद् भर्त्ता स्वदक्षिणनाड्या स्त्रियः वामनाड़ीं पिबेत् तदा ताम् स्त्रियं आमृत्योः मृत्युपर्यन्तं वशयति=वशीकरोति इयं च योषित स्वकीयचन्द्रनाड्या भर्तुः द्युमणि वहं=सूर्यनाड़ी वायुं मुहुः=वारंवारं पिबन्ती सती आमृत्योः=यावज्जीवनं भर्त्तारं वशयति । स्वानुकूलं करोतीत्यर्थः ।

भाषा—पति की सूर्यनाड़ी चलती हो और साथ में शयन की हुई स्त्री का चन्द्रस्वर (वाम स्वर) चल रहा हो तो पति अपने दक्षिण स्वर से पत्नी के वामस्वर का पान करे तो स्त्री मरणपर्यन्त वशगामिनी हो जाती है । इसी प्रकार यदि पत्नी अपने वाम स्वर से पति के दक्षिण स्वर का बारंबार पान करे तो वह अपने पति को यावज्जीवन वश में कर लेती है ॥ ४८ ॥

मदनयुद्धमाह—

मोहनं मदनयुद्धमूचिरे तत् सुधीरण इवात्र चेद्वलम् ।
प्रोक्तमेतदुपैतिमैथुनं द्रावयेतदबलां सुविह्वलाम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः— मोहनं मदनयुद्धं ऊचिरे तत् सुधीरण इव अत्र प्रोक्तं चेद्वलम् एतद् मैथुनं उपैति तदा तत् सुविह्वलाम् अबलां द्रावयेत् ।

विजया—मोहनं=सुरतं, मदनयुद्धं = कन्दर्पयुद्धं कामक्रीडनमित्यर्थः, ऊचिरे= कथयामासुः = बुधाः (साहित्यिकाः) इत्यर्थः, अर्थात् कन्दर्प युद्धे सुधीः बुधजन रणे = संग्रामे इव बलं आचरेत्, अर्थात् यथा युद्धे स्वरबलविचारः क्रियते तथैव सुरतेऽपि स्वरबलं विचारणीयमिति, किं कुर्व० प्रोक्तं बलं यदा अङ्गीकुर्वन् सन् युद्धं = कामयुद्धं मदनमैथुनं सुरतं वा उपैति प्राप्नोति तदा सुविह्वलाम्=मद-

विह्वलाम्, अबलां = स्त्रियं द्रावयेत् = द्रवीभूतं करोति इत्यर्थः पराजयं वा करोति इति भावः ।

भाषाः—सुन्दर बुद्धिवाले बुधजन स्त्रीप्रसङ्ग को मदनयुद्ध भी कहते हैं। साहित्यिकों का ऐसा विचार है कि संग्रामादिक में और विवाद में तथा शास्त्रार्थ आदि में जैसे स्वर का बल आवश्यक होता है उसी प्रकार मदनयुद्ध में भी स्वर का बल आवश्यक होता है। यदि मनुष्य स्वर-बल के आधार पर सुरत कार्य करता है तो वह मदविह्वला अबला को भी सरलतापूर्वक दवित करने में सफल हो सकता है ।। ४९ ।।

द्यूतविषये स्वरबलमाह—

स्वरच्छायानिलार्केन्दुयोगिनीराहुभूबलैः ।
अन्यैश्च द्यूत[1]माबन्धंजयत्येव धनं बहु ।। ५० ।।

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—स्वरः बालः कुमारः युवा, वृद्धः मृतस्वरः, एते वर्णस्वराः छाया सूर्यचन्द्रयोश्छाया अनिलः = वायुः अर्कः = सूर्य इन्दु = चन्द्रः योगिनी = प्रसिद्धाः, राहुः = भूबलानि च एतेषां बलैः = अन्यैश्च बलैः कालाचारार्धप्रहर-होरादीन् बलान्यादाय तैर्बलैः सहायैः द्युतं = युवा इति लोके प्रसिद्धं द्यूतं = द्यूत-क्रीड़ाविशेषं आबध्नन् कुर्वन् तदा बहुधनं जयत्येव ।

भाषा—बाल कुमारादि वर्ण स्वर सूर्य चन्द्रादि की छाया वायु सूर्य चन्द्र योगिनी राहु और भूबल इत्यादि सभी प्रकार के बलों को विचार कर यदि द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ करे अर्थात् जूआ खेले तो बहुत सा धन जीत सकता है ।। ५० ।।

।। इति समरसारे तत्वविचारस्वरकथनप्रकरणम् ।।

●

---

१. 'ॐ ह्लीं रण हुं फट् स्वाहा' इति द्यूतमन्त्रः मन्त्रमहोदधौ ।

जयसाधनान्यौषधान्याह—

आस्येतालजटाथ[1] केतकिदलं शीर्षे च खार्जूरके-
मूलेऽङ्कस्थ इषुर्ल्लगेन्न सघृतैर्भुक्तैरजीर्णैश्च तैः।
कंसायु त्तर[2]मूलिकानिरशनैः पुष्यार्के आत्ता धृता
जग्धा वा सह तंदुलांबुभिरथो पाठाजटापीदृशी ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—अथ आस्ये=मुखे, तालजटा=तालवृक्षस्य मूलं, शीर्षे केतकिदलं = केतकीपत्रम्, खार्जुरके = खर्जूरवृक्षस्य, मूले = मूलभागं, अङ्कस्थे सति इषुः बाणः न लगेत्। अथवा इमानि पूर्वोक्तानि तालमूलं, केतकीपत्रं खार्जूरमूलं च सघृतानि=घृतेन सहितानि भुक्तानि, यावत् उदरे जीर्णानि न भवन्ति तावत् कालपर्यन्तं बाणस्याघातो न भवेत्। कंसारि कंसस्य अरिः कंसारी पीप्पली। उत्तरमूलिका=उत्तमारणी, 'उतरन' इति लोके प्रसिद्धाः। निरशनैः व्रतपूर्वकमित्यर्थः। पुष्यार्क पुष्यनक्षत्रयुता रविदिने, आत्ता=प्राप्ता धृता=धारणे सति, जग्धा वा तंडुलादिभोज्यपदार्थैः साकं भक्षणाद् वा युद्धे शरीरस्य शरीरसंरक्षणाय स्यात्। पाठा जटापि इदृशी पूर्वोक्तविधिना धारणे भक्षणे च शरीरस्यरक्षणं भवेत्। अर्थात् पाठाप्रसिद्धा, जटा जटामासी च निरशनपूर्वकं पुष्यार्के गृहीत्वा सघृततण्डुलजलेन वा सह भुक्तश्चेत्तदापि बाणों न लगेत् ॥ ५१ ॥

भाषा—ताड़वृक्ष की जड़ या जटा मुख में धारण करने से, शिर पर केतकी पत्र धारण करने से और गोद में खजूर की जड़ रखने से वाणादि शस्त्रों का प्रभाव उस व्यक्ति पर नहीं पड़ता। अथवा इन औषधियों को घी के साथ भोजन करने पर जबतक इनकी पाचन-क्रिया पूर्ण नहीं होती तब तक युद्ध में बाणादि शस्त्रों का प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता है। कंसारी की उत्तर दिशा में स्थित उसकी जड़ को उपवास (व्रत) पूर्वक रवि पुष्य के योग में लाकर धारण करने से अथवा घृतादि के साथ भोजन करने से शस्त्र प्रहार का भय नहीं

---

१. 'तालजटा' ताड़वृक्षस्य पुष्पं वा मूलं द्वयमपि ग्राह्यम् ।

२. कंसार्युत्तरमूलिका कंसारी लताविशेषवनौषधिः। तस्या उत्तरदिक्स्था च मूलिका' इस प्रकार की भी व्याख्या मिलती है जो असंगत है। कंसारी का अर्थ कहीं-कहीं हिंसा किया गया है पर यह पृथक् औषधि है जिसे हइन्स कहते हैं।

रहता। इसी प्रकार पाठा और जटा को भी रवि-पुष्य योग में व्रतपूर्वक लाकर धारण करने या तण्डुल आदि के साथ भोजन करने से युद्धादि में बाणादि शस्त्रों का भय नहीं होता है ॥ ५१ ॥

विशेष--इस श्लोक में आये हुए वनस्पतियों का भ्रामक अर्थ किया गया है अतः इसका पूरा पूरा परिचय यथासाध्य जानकारी के लिये दिया जा रहा है-

१. तालजटा—तालवृक्ष या ताड़वृक्ष दोनों नामों से जाना जाता है। जटा का अर्थ मूल से लिया गया है। जो सर्वथा त्याज्य है। इसका पुष्प जो निरर्थक हो जाता है जटा के रूप में वृक्ष पर छोटे २ डंडे की तरह १ फीट या डेढ़ फीट लम्बा तथा अमलतास के फल की तरह वर्तुल होता है। इससे क्षारराज नामक औषधि बनती है।

२. केतकी—इसे केवड़ा कहते हैं। तामिल में जवनान चेदी, तेलगू में मोगालिचेट्टू तथा फारसी में काही कहते हैं और अंग्रेजी में स्क्रूपाईन नाम से पुकारते हैं। इसकी उपलब्धि मद्रास, आन्ध्र प्रदेश तथा उड़ीसा में अधिक होती हैं। केवड़ाजल, केवड़ा इत्र इत्यादि इससे बनता है। यह अत्यधिक सुगन्धित पुष्प वाला होता है। इसका पत्ता धारण किया जाता है।

३. खार्जूर—खजूर को कहते हैं। यह राजस्थान या अरब देशों में अधिक पाया जाता है। इसे फारसी में खुर्मा तथा अंग्रेजो में डेट कहते हैं। इसका मूल धारण किया जाता है।

४. कंसारि—कृष्ण, पिप्पली ये दोनों नाम भी हैं। कहीं कहीं हींसा भी कहा जाता है। इसे हंइस या गृध्रनखी कहते हैं। यह भिन्न औषधि है। इसका कंसारी से कोई सम्बन्ध नहीं है। पीप्पली को ही कृष्णा या कंसारी कहते हैं।

५. उत्तरमूलिका—इसे उत्तमारणी भी कहते हैं तथा लोक में उतरन भी कहा जाता है।

उपरोक्त औषधियों की पूरी जानकारी लेखक द्वारा लिखित 'ज्योतिष और बनस्पति'[1] नामक पुस्तक में देखिये।

---

१. 'ज्योतिष और वनस्पति' यह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है। इसके लिखने का कारण यही है कि ज्योतिषशास्त्र में जिन वनस्पतियों का नाम

अंकोला[1] लक्ष्मणा पुंखा सर्पाक्षी शिखिचूलिका ।
विष्णुक्रान्ता काकजंघा नीलो देवी च पाटला ॥ ५२ ॥
भुजास्यमूर्धगा भुक्ता तज्जटैकापि वारयेत् ।
रणेदारुणशस्त्रौघं यावज्जीर्यति नोदरे ॥ ५३ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—अंकोलः लक्ष्मणा पुंखा सर्पाक्षी शिखिचूलिका (मयूर शिखा), विष्णुक्रान्ता, काकजंघा, नीली, देवी=सहदेवी एवं पाटला एतासामौषधीनां मूलानि तन्मध्ये एकापि जटा भुजे=बाहौ धृता सति, आस्ये=मुखे वा शिरसि=मस्तके धृता सति, खादिता वा रणे=युद्धे संग्रामे वा दारुणं=कठिनं, शस्त्रौघं=शस्त्रसमूहं, वारयेत्=निवारयेत् । कियता कालेनेति शंकायाम्, यावत्पर्यन्तमुदरे न जीर्यति, धारणे धारणपक्षे च यावद्धारणं तावच्छस्त्रवारणं स्यादिति ।

भाषा—अंकोल (अकोहर), लक्ष्मणा (स्वेत कंटकारी इसकी पहचान स्वेत पुष्प होने से होती है) शरपुंखा, सर्पाक्षी, मयूरशिखा, विष्णुक्रान्ता, काकजंघा, नीली, सहदेवी और पाटला (पाढ़ल इन औषधियों में से किसी एक का मूल भी सविधि[2] प्राप्त कर बाहु में बांधे, मुख में रखे रहे (युद्धकाल पर्यन्त) या मस्तक पर धारण करे तो जब तक धारण किया रहे, युद्ध में भयानक अतितीक्ष्ण शस्त्रों का प्रभाव भी उसके शरीर पर नहीं होता । तथा घृतदुग्ध आदि के साथ भोजन करने से जब तक इसकी पाचनक्रिया पूर्ण नहीं हो जाती, शरीर पर शस्त्रों के आघात का प्रभाव नहीं पड़ता ॥ ५२–५३ ॥

विशेष—

१. अङ्कोल—इसका लैटिन नाम एलञ्जियमसाल्विफोलियम है । हिन्दी में अंकोल, ढेरा, ढेला आदि से कहा गया है । तामिल में एलाङ्गि, तेलगु में अंकोलमु कहते हैं । यह भारतवर्ष के शुष्क प्रदेशों में तथा दक्षिणभारत के जंगलों में अधिक पाया जाता है ।

लाया है उनका उचित ज्ञान ज्योतिष-शास्त्र के अध्येताओं को हो सके । —लेखक

१. इसका विशेष गुण आचार्य वाराहमिहिर ने अपनी वाराही संहिता के वृक्षायुर्वेदाध्याय में लिखा है ।

२. औषधि-आहरण की विधि अध्याय के अन्त में दी गई है ।

२. लक्ष्मणा—जो कंटकारी या भटकटैया सफेद फूल का होता है उसे लक्ष्मणा कहते हैं। यह भारतवर्ष में कम मिलता है तथा तन्त्र में इसका बहुत महत्व माना गया है।

३. पुंखा—इसे शरपुंखा, बंगला में वननील, पंजाब में सरपंख, तेलगू में वेंपलि तथा मलयालम में काटामिरि कहते हैं। इसकी फली मटर की फली की तरह विशेष चपटी होती है।

४. सर्पाक्षी—सर्पनेत्राकृति पुष्पवाली औषधि।

५. शिखिचूलिका—मयूरशिखा या मधुच्छदा भी कहते हैं। लैटिन नाम—ऐडिएण्टम् कॉडेटम है।

यह हंसपदी की जाति का है। यह प्रायः आर्द्रपहाड़ियों पर नदी-नालों के किनारे होती है और जनवरी में सूख जाती है। फल जुलाई से दिसम्बर तक लगते हैं।

६. विष्णुक्रान्ता—श्वेत कंटकारी (रेगनी) को विष्णुक्रान्ता कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—नीले पुष्पवाला तथा श्वेत पुष्पवाला। नीले पुष्पवाला बहुत मिलता है और श्वेत पुष्पवाला कम मिलता है।

७. काकजंघा—यह एक औषधि-विशेष है। यह च्यवनप्राश में पड़नेवाली औषधियों में से एक है।

८. नीली—नीलपुष्पा, नीलिनी, रञ्जनी, ग्रामीणा, शारदी भी कहते हैं। हिन्दी में नील तामिल में अवरि या नीलम् तथा अंग्रेजी में इण्डिगो कहते हैं। यह वेदना हरण करनेवाला व्रणरोपण तथा विषघ्न होता है।

९. देवी—इसे सहदेवी या लोक में सहदेइया कहते हैं। भृङ्गराज कुल है। तथा अंग्रेजी में पर्पलफ्लीवेन और तेलगू में गरिटीकम्मा कहते हैं। यह शोथहर तथा वेदना स्थापन ज्वरघ्न है। इसकी प्रशस्ति तन्त्रविदों ने पर्याप्त किया है।

१०. पाटला—पाढ़ल या अधकपारी, बंगला में पारुल तथा तामिल में पाडरि नाम से पुकारते हैं। यह त्रिदोषशामक, व्रणरोपक तथा वेदनास्थापक होता है।

स्वर्णाभा सिंहिकाकिण्यां सिंहीपृष्ठः सतज्जटः।
अन्तस्थः पारदः सिक्थमुद्रो जयद आस्यगः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—स्वर्णाभा स्वर्णस्य आभा प्रभा सहिता युक्ता पीतवर्णा इति भावः। (औषधिनिर्माणे कपर्दकभस्मनिर्माणार्थमपि पीतवर्णा एव काकिण्यः गृह्यन्ते) सिंहिकाकिण्यां=सिंहिनाम कपर्दिका (कौड़ी इति लोके प्रसिद्धा), सिंही=कंटकारी, सतज्जटः[1] =पञ्चाङ्गमितिभावः। सतज्जटः सिंही कंटकार्याः मूलरसेन सिक्थः घृष्टः (भावनया) पारदेन सहितः (गुटिकारूपेणेतिभावः। आस्यगः=मुखस्थः सन् जयदो जयप्रदः स्यादिति भावः ॥ ५४ ॥

भाषा—पीली चित्तीकौड़ी के अन्दर कटेली के स्वरस से भावना दिया हुआ पारद रखकर उसे किसी प्रकार भर दे और उसे मुख में धारण करे तो संग्राम में विजयी होता है।

> चक्रमर्दकगोजिह्वाशिखिचूडाजटास्वपि ।
> एकैका वादजयदा पुष्यार्कात्तास्यमूर्द्धगा ॥ ५५ ॥

अन्वयः—चक्रमर्दक, गोजिह्वा, शिखिचूडा एकैका जटासु अपि पुष्यार्कात्तास्य-मूर्द्धगा वादजयदा (स्यात्) ॥ ५५ ॥

विजया—चक्रमर्दकः=प्रसिद्धः, चकवढ़ इति लोके प्रसिद्धः। गोजिह्वा=गोभी, शिखिचूड़ा=मयूरशिखा एतासु मध्ये एकैका जटा अपि पुष्यार्कयोगे आत्ता=प्राप्ता गृहीत्वा इतिभावः। आस्यगा = मुखस्था, वा मूर्द्धगा = शिरस्था, वादे=वाद विवादे वा युद्धे जयप्रदा स्यात्।

भाषा—चक्रमर्द, गोभी और मयूरशिखा इनमें से किसी एक की जड़ को भी रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में लाकर यदि मुख में धारण करे अथवा शिर पर बाँध रखे तो वाद-विवाद या युद्ध में अवश्य ही विजयी होता है ॥५५॥

विशेष—उपरोक्त अर्थ श्लोक ५४ का भ्रामक है इसका कारण वनौषधियों का अपूर्ण ज्ञान मात्र है। प्रायः सभी टीकाकार एक ही अर्थ लिखे हैं जो अनुकरण सरणि है अतः सुविचारित अर्थ भी दिया जा रहा है। विद्वज्जन विचारपूर्वक उत्तम को ग्रहण करें।

स्वर्णाभा = अमलतास, सिंही = कंटकारी, सिंहिकाकिणी = कपर्दिका (कौड़ी), पीतवर्णा अर्थात् अमलतास कंटकारी के पञ्चाङ्ग स्वरस से सिंहिकौड़ी को खरल

---

१. 'शतपुष्पा' वा।

कर उसकी गुटिका वनालें और उसमें पारद को रखकर उसका छिद्र वन्द कर दें। तदनन्तर युद्धादि के अवसर पर उसे मुख में धारण करने से विजय प्राप्त होता है। उपरोक्त वनौषधियों के लाने की विधि पूर्ववत् समझनी चाहिए तथा पुष्यार्कयोग ही इसके संग्रह एवं उत्पाटनादि में सफल सिद्ध होगा।

चक्रमर्द चकवढ़, गोजिह्वा गोभी अर्थ लिखा है पर गोजिह्वा के खुरदरा होने के कारण उसी गुण से युक्त इसे गोजिह्वा कहा गया है। हिन्दी में इसे गाजवां, अरवी में लिसानुस्सौर खरपत्रा, दर्वीपत्रा तथा लैटिन में ओनोस्मा ब्रैक्टिएटम कहते हैं। शिखिचूड़ा=मयूरशिखा। उपरोक्त सभी औषधियाँ प्रायः व्रणहर तथा शोथहर हैं।

विशेष—इस[1] औषध-प्रकरण में जिन औषधियों को लाने का निर्देश किया गया है उनके आहरण की विधि इस प्रकार है।

जिस दिन शनिवार हो तथा पुष्य नक्षत्र हो, दोनों के योग (पुष्यार्कयोग)

---

१. नरपतिजयचर्या के स्वरोदय प्रकरण में कुछ अधिक औषधियों का उल्लेख किया गया है जिसे यहाँ दिया जा रहा है। विशेष ज्ञान के लिए नरपतिजयचर्या स्वरोदय प्रकरणदेखें—

ईश्वरी ब्रह्मदण्डी च कुमारी वैष्णवी तथा।
वाराही वज्रिणी चण्डी तथा रुद्रजटाभिधा ॥ १ ॥
लांगली सहदेवी च पाठा राजा पुनर्नवा।
मुद्गरी भूतकेशी च सोमराजी हनूजटा ॥ २ ॥
श्वेता पराजिता गुञ्जा श्वेता च गिरिकर्णिका।
क्षुद्रिका शंखिनी चैव विडंगी शरपुंखिका ॥ ३ ॥
खर्जूरी केतकी ताडी पूगीस्यान्नरिकेलिका।
अंजनः कांचनारश्च चंपकोऽश्मंतकः कुहू ॥ ४ ॥
अपामार्गाकं भृङ्गी च ब्रह्मवृक्षो वटस्तथा।
शतमूली वलायुग्मं गोजिह्वोपल सारिका ॥ ५ ॥
अष्टलोहा रसा वज्री हरिद्रा तालकं शिला।
एता औषधयो दिव्या जयार्थं संग्रहेद्बुधः ॥ ६ ॥

से एक दिन पहले व्रत करके और सायंकाल औषधि के पास जाकर उसके मूल के पास अक्षत, पुष्प और सुपारी रखकर प्रार्थना करे कि 'हे वनस्पति ! अपने अमुक कार्यसिद्धि के लिए आपको आमन्त्रित करता हूँ'। 'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा' इतना कहकर लौट आवे और पुष्यार्कयोग में पवित्रतापूर्वक प्रातःकाल जाकर 'येन त्वां खनते ब्रह्मा इन्द्रो विष्णुर्महेश्वरः। तेनाहं खनयिष्यामि तिष्ठ तिष्ठ

खर्जूरी मुखमध्यस्था कटिबद्धा च केतकी।
भुजदंडस्थितस्तालः सर्वशस्त्रनिवारणः ॥ ७ ॥
दक्षबाहुस्थितश्चार्को वामेंदुर्हृदये धरा।
रुद्रः पृष्ठस्थितो युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ८ ॥

यामले—

सिंही व्याघ्री मृगी हंसी चतुर्धेवं कपर्दिका।
एतासां लक्षणं वक्ष्ये प्रभावं च यथाक्रमम् ॥ ९ ॥
सिंही सुवर्णवर्णा च व्याघ्री धूम्रा सरेखिका।
मृगीं तत्र विजानीयात्पीतपृष्ठी सितोदरी ॥ १० ॥
हंसी जलतरा श्वेता विदंता नातिदीर्घिका।
एवं विशेषान्विज्ञाय ततः कर्म समाचरेत् ॥ ११ ॥
औषधी सिंहिका नाम तस्या मूलस्य यो रसः।
सिंहीकपर्दिकामध्ये क्षेप्यस्तन्मूलसंयुतः ॥ १२ ॥
पिधाय वदनं तस्या सिक्थेन च समन्वितः।
अस्यां वक्त्रस्थितायां तु सिंहवज्जायते नरः ॥ १३ ॥
व्याघ्रीरसेन संघृष्टः पारदोमूल संयुतः।
पूर्ववत्साधयेद्व्याघ्रीं फलं चैव तथाविधम् ॥ १४ ॥
मृगमूत्रेण संभिन्ना मृत्तिकारससंयुता।
मृगधिष्ण्ये क्षिपेन्मृग्यां तस्याफलमतः शृणु ॥ १५ ॥
मुखमध्ये स्थितायां च वशीभवति मानवः।
रतिकाले मुखस्थायां बालाप्राणहरो नरः ॥ १६ ॥
हंसपादी रसैर्घृष्टः पारदो मूलसंयुतः।
हंसीमध्ये क्षिपेद्धीमान् मुखस्था सर्वसिद्धिदा ॥ १७ ॥

महौषधि ॥' ऐसी प्रार्थना करता हुआ 'ॐ क्रीं अनु हूं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से औषधि को समूल उखाड़ लावे तथा उसे अपने कार्य के अनुसार धारण करे या भक्षण करे तो वनस्पति देवता अवश्य ही उसकी रक्षा करते हैं। धारण से पहले १०८ बार 'ॐ जूं सः' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिए।

इति समरसारे औषध प्रकरणम् ॥

यायिस्थायिनोर्जय-पराजयौ विवक्षुः कोटचक्रमाह—

भास्राणि प्रलिखेदुपर्युपरि च त्रीणीशदिश्यग्निभाद्-
बाह्यात्रीणि लिखांतराच्छिवमतोप्यैन्द्रयां च सार्पं बहिः।
आग्नेयादिति पितृतो यमदिशि न्यस्यन्बहिः सप्तमं
मैत्राद्वासवतोऽन्ययोः खयबहिद्दं मध्यमेंतश्चदम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—उपरि उपरि च त्रीणि भास्राणि प्रलिखेत ईशदिशि अग्निभात बाह्या त्रीणि लिखान्तरात् शिवमतो पेन्द्रयां च बहिः सार्पं आग्नेयादिति पितृतो यमदिशि सप्तमं बहिः न्यस्य मैत्रात् वासवतः अन्ययोः ख य बहिर्दं मध्यमेन्तश्चदम् लिखेदिति भावः।

विजया—क ट प य वर्ण भवेरिह इत्यादिना भवर्णेन चतुः संख्या ग्राह्या। भास्राणि चतुरस्राणि इति भावः अर्थात् प्रलिखेत् उपरि उपरि च त्रीणि भास्राणि प्रलिखेत् अर्थात् प्रथमं तावत् एकः चतुरस्रः निर्माय तदुपरि ततो महान् सजातीयं चतुरस्रं च निर्माय ततोपरि अपरं बृहद् सजातीयं चतुरस्रं च निर्माय तत्र मध्यस्थं चतुरस्रं कोटसंज्ञं तेषु त्रीषु अपि चतुरस्रेषु ईशदिशि=ऐशान्यां, अग्निभात्=कृत्तिकानक्षत्रमारम्य बाह्याचतुरस्रादारम्य त्रीष्वपि ऐशान्यां अन्तर्विंशति त्रीणि मृगशिरोऽन्तानि लिखेदिति अन्तरात् मध्यवर्त्तिनः चतुरस्राद् शिवभं=आर्द्रा तदारम्य त्रीणि भानि ऐन्द्रयां=प्राच्यां दिशि चतुरस्र त्रय प्राग्रेखा मध्यस्थानेषु बहिर्निःसरन्ति लिखेत्। सार्पं=अश्लेषां बहिः=बाह्यचतुरस्रादपि बहिः प्राच्यं एतत् लिखेत् इत्यनेनैव प्रकारेण आग्नेयात् कोणात् आरम्य पितृतः=मघा नक्षत्रात् यमदिशि=दक्षिणस्यां सप्तमं विशाखां बहिर्न्यस्य लिखेत् पुनः मैत्र्यात्=अनुराधा नक्षत्रात् वासवतः=धनिष्ठा पर्यन्तं अन्ययोर्नैर्ऋत्यवायव्ययोः कोणयोः प्राग्वत् लिखेत् एवं दिग् विदिग् बाह्य चतुष्कत्रयेण खय=१२ द्वादशभानि बहिः चतुरस्रे लिखितानि स्युः मध्ये चतुरस्रे च दम्=८ अष्टौ अन्तः मध्य चतुरस्रे च दम्=

अष्टौ भानि स्युः। एवं कोटचक्रे साभिजित् अष्टाविंशति नक्षत्राणि स्थापनीयानि येन कोटचक्रं सम्पन्नं भवेत्।

भाषा—कोटचक्र में तीन विभाग किये गये है। इस कोटचक्र का निर्माण चार रेखाओं के द्वारा निर्मित चार चतुर्भुजों के द्वारा किया गया है। प्रथम चतुर्भुज क्षेत्र से बने हुए चतुरस्र के भीतरी भाग को गणपतिपुर कहा गया है। यहाँ राजा के विशिष्ट सैनिक, जनसमूह एवं परिवार रहता है। उसके बाहर के चतुरस्र के अन्दर भाग को परकोटा कहते हैं और उसके अन्दर विशिष्ट युद्ध की सामग्री एवं भोजनादि की व्यवस्था रहती है। तथा उसके बाहर के चतुरस्र को वप्रकोट प्राकार या मध्यवप्र और उसके बाहर के चतुर्भुजान्तर भाग को बाह्य कोष्ठक या वेष्टक कहा जाता है। इस प्रकार कोटचक्र सम्पन्न हो जाता है। इस कोटचक्र में चार कोण का तीन रेखात्मक बने हुए कोटचक्र के अन्दर पहले ईशान पूर्व, अग्नि, दक्षिण नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य और उत्तर कोणों को क्रमशः दक्षिणावर्त्त क्रम से लिखें तथा उसके बाद के चतुर्भुज रेखाओं के कोणों और मध्य में अभिजित सहित २८ नक्षत्रों की स्थापना इस प्रकार करें। ईशान कोण से प्रथम चतुरस्र के कोण पर कृत्तिका अन्तस्थ द्वितीय चतुरस्र के कोण पर रोहिणी तदनन्तर मध्यस्थ गणपति चतुरस्र के कोण पर मृगशिरा नक्षत्र लिखें। इसके बाद पूर्व दिशा की तरफ मध्य से बाह्य की तरफ आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य तथा पुष्य के ऊपर आश्लेषा को लिखें। इसके बाद अग्निकोण से भीतर की तरफ मघा, पूर्वा और उत्तरा फिर दक्षिण दिशा में भीतर से बाहर की तरफ हस्त चित्रा स्वाती विशाखा फिर नैर्ऋत्य कोण मे भीतर की तरफ अनुराधा ज्येष्ठा मूल फिर पश्चिम में भीतर से बाहर की ओर पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढ़ा अभिजित और श्रवण को लिखे, फिर वायव्य कोण में धनिष्ठा शतभिष पूर्वाभाद्रपद और उत्तर की दिशा में भीतर से बाहर की तरफ उत्तराभाद्रपदा रेवती अश्विनी और भरणी को लिखे। इस प्रकार समचतुरस्र कोटचक्र बन जाएगा। कोटचक्र में १२ नक्षत्र बाह्य भाग में, आठ मध्य में और आठ अन्दर में, कुल अट्ठाइस नक्षत्रों का समावेश किया गया है। स्पष्टीकरण के लिए कोटचक्र देखें।

विशेष—नरपतिजयचर्या में इसी प्रकार समचतुरस्र कोटचक्र का निर्माण दर्शाया गया है, किन्तु उसमें १. खल कोटचक्र, २. समचतुरस्र कोटचक्र, ३. दीर्घ

चतुरस्र कोटचक्र, ४. वर्त्तुलकोटचक्र, ५. त्रिकोणकोटचक्र, ६. वृत्तदीर्घकोटचक्र ७. धनुराकार कोटचक्र, ८, गोस्तनाकार कोटचक्र और ९. अर्धचन्द्राकृति कोटचक्र ये विभिन्नरूपों में दिए गए हैं ।

कोटचक्रम्
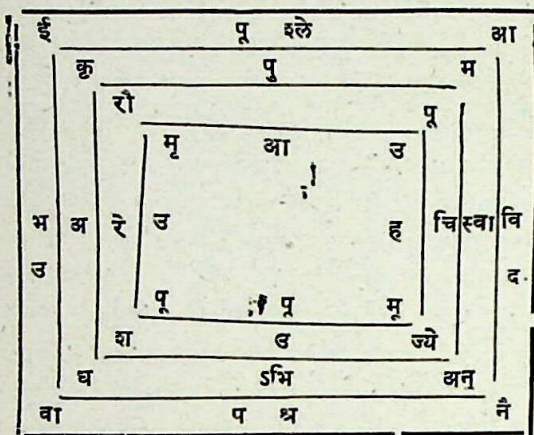
कोणभानि प्रवेशे स्युर्द्वादशान्यानि निर्गमे ।
षष्ठषष्ठं सप्तकेषु मध्ये स्तम्भचतुष्टयम् ।। ५७ ।।

अन्वय:—कोणभानि द्वादशानि प्रवेशे अन्यानि निर्गमे सप्तकेषु षष्ठं षष्ठं मध्ये स्तम्भचतुष्टयं च बोधव्यमिति ।

विजया—कोणभानि=कोणा ईशान्याद्या: तत्र लिखितानि यानि भानि तानि कोणभानि द्वादश संख्याकानि प्रवेशे स्यु: अर्थात् कृत्तिका रोहिणी मृगशिर: त्रीणि ऐशान्यां, मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनि आग्नेय्यां, अनुराधा ज्येष्ठा मूल नैर्ऋत्यां, धनिष्ठा शतभिष पूर्वाभाद्रपदा वायव्यां मिलित्वा एतानि द्वादशकोणभानि ग्रहाणां कोटप्रवेशे भवन्ति, प्रवेशतया लिखितत्वात् अन्यानि पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, चित्रा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, रेवती, अश्विनी, भरणी एतानि चतसृषु पूर्वादि दिक्षु स्थितानि द्वादशभानि निर्गमे ग्रहाणां स्यु। निर्गमतया लिखितत्वात् सप्तकेषु अश्विनि पुष्य स्वाती, अभिजिदादिषु चतुर्षु चतुर्षु दिक्षु स्थितेषु प्रथमात् यत् षष्ठं षष्ठं स्यात् यथा अश्विन्यादि सप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठमो आर्द्रा

पुष्यासु सप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठं हस्त स्वात्यादिषु सप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठं पूर्वाषाढ़ा एवं अभिजितादि सप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठं उत्तराभाद्रपदा एतानि चत्वारि नक्षत्राणि मध्ये कोटस्थं स्तम्भचतुष्टयसंज्ञकं स्यात् ।

भाषा—कोटचक्र में चारों कोणों के बारह नक्षत्र प्रवेश के और अन्य बारह नक्षत्र निर्गम के तथा अश्विन्यादि सात-सात नक्षत्रों का प्रत्येक छठवां नक्षत्र आर्द्रा हस्त पूर्वाषाढ़ा और उत्तराभाद्रपदा ये चार नक्षत्र बीच में स्तम्भ-संज्ञक कहे गए हैं ।

उपलक्षमेव कृत्तिकादौ प्रथमं दुर्गममेव वैरिभं वा ।
ग्रहचक्रमुडुस्थमालिखेद्वै चतुरस्रं वरणं च मध्यमं स्यात् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—कृत्तिकादौ उपलक्षणमेव दुर्गमं वा वैरिभं प्रथमं एव (कृत्वा) ग्रहचक्रं उडुस्थं आलिखेत् वै मध्यमं चतुरस्रं वरणं च स्यात् ।

विजया—पूर्वं यत् कृत्तिकादि नक्षत्रलेखनं उक्तं तदुपलक्षणमेव न तु नियमेन चोक्तं कृत्तिकादौ च लेख्ये प्रथमं दुर्गस्थानं दुर्गमं पूर्वोक्तात् अवकहड़ा-चक्रात् ज्ञातव्यं दुर्गनक्षत्रं कोणभं ईशानकोणे लेख्यम् । अथवा वैरिभं शत्रुभं च ईशानकोणे लेख्यम्, अन्यानि प्राग्वत् क्रमगणनया लेख्यानि तेषु च भेषु ग्रहचक्रं सूर्य चन्द्रादि नवग्रहान् यथा यथा नक्षत्रगततया लिखेत् । अर्थात् समस्त सूर्यादि नवग्रहा स्वकीय स्वकीय भुज्यमाननक्षत्रे स्थाप्या इत्यर्थः । अथ कोटचक्रे मध्यमं चतुरस्रंवणं प्राकारस्थानीयं च भवेत् ।

भाषा—पूर्व में कृत्तिकादि क्रम से ईशानादि दिशाओं में जो नक्षत्र-स्थापन का क्रम है वह केवल उपलक्षण है अर्थात् समझाने के लिए लिखा गया है। वास्तविकता यह है की दुर्ग का नाम अथवा शत्रु के नाम के आद्यक्षर के आधार पर अवकहड़ा चक्र के द्वारा जो नक्षत्र प्राप्त हो उसी से आरम्भ करके उपरोक्त रीति के अनुसार कोटचक्र में ग्रहों की स्थापना करनी चाहिए और जिस नक्षत्र पर जो ग्रह हो उसे भी लिख देना चाहिए । इस चक्र में बीच का चतुरस्र प्राकार नाम से कहा गया है ।

उदाहरण—यदि किसी समय कोई व्यक्ति प्रश्न करता है कि मेरे पारिजात नामक किले पर, सम्प्रति ग्रहस्थिति कैसी है, अतः यह जानने के लिए अवकहड़ा चक्र के अनुसार परिजात के नाम-नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी को ईशानकोण में स्थापित

करके पूर्वक्रमानुसार कोटचक्र का निर्माण इस प्रकार किया तथा साथ ही सूर्यादि ग्रहों को भी तात्कालिक ग्रहस्थिति के अनुसार स्थापित किया। इस प्रकार फल देखने के लिए निम्नलिखित कोटचक्र बन गया।
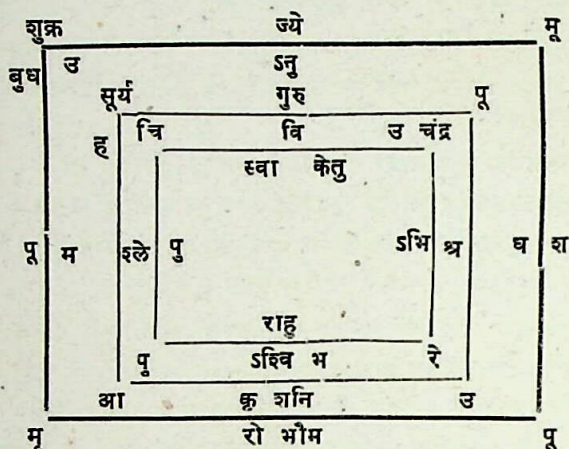
क्रूर सौम्य ग्रहावस्थित्या दुर्गभङ्ग रक्षादिकमाह—

क्रूरा अन्तर्बाह्यगाः सौम्यखेटा दुर्गे भङ्गो वेष्टिके वैपरीत्यात्।
क्रूरा मध्ये वप्रगाः सौम्यखेटा भेदो भङ्गश्चात्र युद्धं विनापि ॥ ५७ ॥

अन्वयः-- क्रूरा अन्तर सौम्यखेटा बाह्यगा दुर्गे भङ्गो। वैपरीत्यात् वेष्टके क्रूरा मध्ये सौम्यखेटा वप्रगा (तदा) अत्र युद्धं विनापि भङ्गः (जायते)।

विजया—क्रूरा = क्रूरग्रहाः, (शन्यर्कराहु माहेयाः केतुः क्रूरग्रहाः मताः, इत्यादि) आभ्यन्तरे सौम्यखेटाः = सौम्यग्रहाः (बुध शुक्रेन्दुजीवाश्च सदा सौम्यग्रहा मताः) बाह्यगाः तदा दुर्गभङ्गः भवति, वैपरीत्याद् एवं वेष्टक भङ्गः स्यात् अर्थात् शुभग्रहाः अभ्यन्तरगा पापग्रहाः बाह्यस्था स्युः तदा वेष्टकानाम भङ्गः स्यात् क्रूरा मध्ये सौम्यखेटा च वप्रगाः = कोटबाह्यस्थाः अत्र अस्मिन् योगे युद्धं विनाऽपि भेदो भङ्गश्च भवति।

भाषा—क्रूरग्रह कोट के भीतर और सौम्यग्रह कोट के बाहर हों तो किला

भङ्गः होता है। यदि स्थिति इसके विपरीत हो अर्थात् सौम्यग्रह भीतर हों और पापग्रह बाहर हों तो वेष्टक अर्थात् घेरेबंदी करनेवाले आक्रामक राजा की सेना का द्रावण (भङ्ग) होता है और क्रूरग्रह मध्य में अर्थात् परकोटे के भीतर और सौम्यग्रह कोट पर हों तो विना युद्ध के ही भेदनीति से किले का भङ्ग हो जाता है।

स्फुटार्थ चक्र का अवलोकन करें।
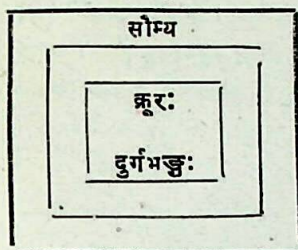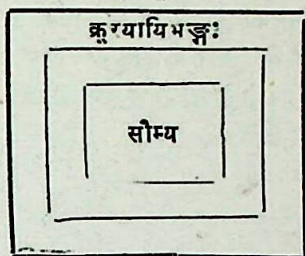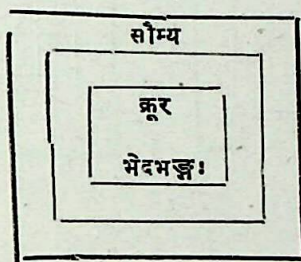
विशेष—

व्यत्यासे त्वावेष्टकस्यैव भङ्गो दुर्गे भग्नेऽप्युद्रुवे नात्र मिथ्या।
प्राकारेऽन्तःक्रूरखेटा बहिश्चेत् सौम्याः कृच्छाद्दुर्गभङ्गस्तदानीम् ॥६०॥

अन्वयः—व्यत्यासे तु भग्ने दुर्गे अप्युद्रुवे आवेष्टकस्यैव भङ्गो अत्र मिथ्या न प्राकारेऽन्तःक्रूरखेटा बहिश्चेत् सौम्याः तदानीं कृच्छ्राद् दुर्गभङ्गः (स्यात्)।

विजया— व्यत्यासे = वर्णित श्लोक एकोनषष्टि विषयवैपरीत्येति भावः।

अत्र व्यत्यासे सति आवेष्टकस्यैव भङ्गः स्यात्, शुभग्रहाः = कोटमध्यस्था पापग्रहा वप्रगा कोटस्था तदा दुर्गे भग्नेऽपि आवेष्टकस्यैव भङ्गः स्यात्। अत्र मिथ्यान्न सत्यमेव भवेदिति भावः = प्राकारे मध्यकोटे = अन्तःकोटमध्ये वा क्रूरखेटाः = पापग्रहाः, बहिश्चेत् सौम्याः = शुभग्रहाः, तदानीं कृच्छ्रात् = कष्टात्, दुर्गभङ्गो वाच्यः।

भाषा—पहले कहे हुए उनसठवें श्लोक के विपरीत अर्थात् सौम्यग्रह कोट के भीतर हों और पापग्रह कोट पर हों तो किला टूट जाता है, फिर भी बाहर की सेना का ही अर्थात् आक्रामक का ही नाश होता है और परकोटे पर तथा परकोटे के भीतर पापग्रह हों और प्राकार से बाहर सौम्यग्रह हों तो कठिनाई से किला टूटता है या किले पर अधिकार होता है। स्पष्टीकरण के लिए चक्र नं० १ और २ देखें।
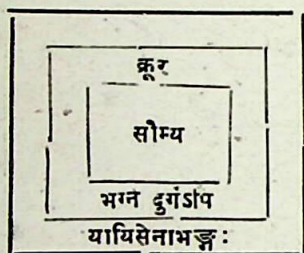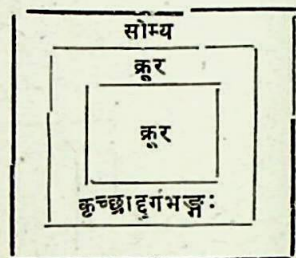
पुनर्विशेषः—

> वप्रे बाह्ये क्रूरखेटाश्च मध्ये
> सौम्याः खण्डः स्यान्न दुर्गस्य भङ्गः।
> वप्रे सौम्या अन्तरा बाह्यतश्च
> क्रूरा भङ्गः सैन्ययोः स्याद् द्वयोस्तु ॥ ६१ ॥

अन्वयः—वप्रे बाह्ये क्रूरखेटा च मध्ये सौम्या खण्डः स्यात् न दुर्गस्य भङ्गः स्यात् वप्रे सौम्याः अन्तरा बाह्यतश्च क्रूरा स्यात् द्वयोः सैन्ययोः तु भङ्गः स्यात्।

विजया—वप्रे बाह्ये चेत् क्रूरग्रहाः स्युः मध्ये च सौम्याः शुभग्रहाः तदा दुर्गे खण्डमात्रं विघटनमात्रं अल्पक्षतिरिति भावः स्यान्न तु दुर्गस्य भङ्गः स्यात्।

वप्रे चेत् सौम्याः = शुभग्रहाः अन्तरा बाह्यतश्च क्रूराः = पापग्रहाः तदा द्वयोः स्थायि यायी सैन्ययोः भङ्गः स्यात् ।

भाषा—यदि पापग्रह प्राकार पर और बाहर हों तथा शुभग्रह भीतर हों तो दुर्ग की किञ्चित् क्षति होती है पर दुर्ग अभेद्य ही रहता है और सौम्यग्रह किले (परकोटे) पर हों और क्रूरग्रह बाहर और भीतर हों तो आक्रमण करनेवाला और जिसपर आक्रमण किया जाता है इन दोनों ही राजाओं की सेनाओं का नाश होता है ।

उदाहरण नीचे के चक्र से देखें ।

(१)
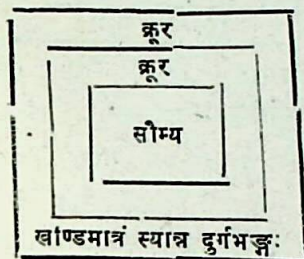
(२)
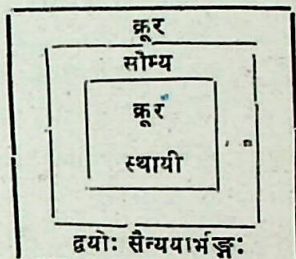
वप्रे क्रूरा बाह्यमध्ये तु सौम्या-
स्तुल्यं युद्धं खण्डिपातोऽन्वहं च ।
वप्रे बाह्येऽन्तर्यदा क्रूरसौम्याः
घोरे युद्धे स्याद् द्वयोर्भङ्ग एव ॥ ६२ ॥

अन्वयः—सुगमम् ।

विजया—वप्रे क्रूराः=पापग्रहाः बाह्ये मध्ये तु सौम्यग्रहाश्चेत् तदा तुल्यं युद्धं द्वयोः सैन्ययोर्भवति, अन्वहं = प्रतिदिनं च दुर्गे खण्डिः पतेत् चेद् प्राकारे बाह्ये = बहिर्देशे अन्तः=दुर्गमध्ये च क्रूर सौम्याः मिलिता ग्रहाः स्युः तदा घोरे अतिशययुद्धे द्वयोः अपि सेनयोः भङ्ग एव स्यात् ।

भाषा—यदि किले पर क्रूरग्रह हों और बाहर तथा भीतर सौम्यग्रह हों तो बराबर युद्ध होता है और प्रतिदिन किला टूटता और बनता रहता है । तथा

इसी प्रकार बांहर भीतर तथा कोट पर तीनों जगह मिश्रग्रह हों तो भयानक युद्ध होकर दोनों पक्षों का नाश होता है।

उदाहरण चक्र से समझे--
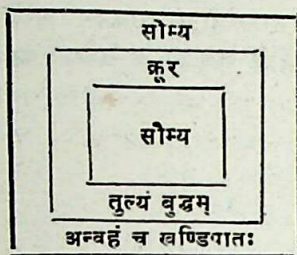
(१) (२)
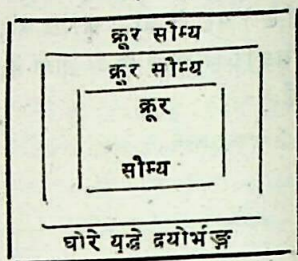
तुल्या बाह्योऽन्तश्च चेत्क्रूरसौम्याः
सन्धिर्वाच्यो यायिदुर्गेशयोस्तु।

अन्वयः—चेत् क्रूरसौम्याः बाह्योऽन्तश्च तुल्या तदा यायि दुर्गेशयोस्तु संधिः वाच्यः।

विजया—चेत् यदि क्रूरसौम्याः पापग्रहाः शुभग्रहाश्च बाह्योऽन्तश्च अर्थात् कोटस्य बाह्यभागे अन्तर्देशे (गणपतिस्थाने) च तुल्याः=समाः स्युः तदा यायि=जयाभिलाषिणः दुर्गेशयोः स्थायिनः द्वयोः मध्ये संधिः वाच्यः।

भाषा— कोट के बाहर और भीतर दोनों ही जगह शुभग्रह और पापग्रह यदि तुल्य बली हों अथवा बाहर जितने क्रूरग्रह हों उतने ही सौम्यग्रह भी हों तथा भीतर जितने सौम्यग्रह हों उतने ही पापग्रह भी हों तो स्थायी और यायि दोनों राजाओं में सन्धि होती है।

ज्ञारौ स्तंभर्क्षे प्रवेशेऽपि वा चेत्
चन्द्रो जीवत्पक्षगः स्यात् प्रवेशे ॥ ६३ ॥
रुन्ध्याद् दुर्गं वाकुलीधेऽथ युद्धं
व्यत्यासेनान्तस्थसैन्यं विदध्यात्।
दिक्ष्वीज्यारौ काव्यवक्रस्थसौम्यौ
दुर्गे भङ्गं निर्दिशन्ति क्रमेण ॥ ६४ ॥

अन्वयः—ज्ञारो स्तंभर्क्षे प्रवेशेऽपि वा चेत् चन्द्रो जीवत्पक्षगः प्रवेशे स्यात् दुर्गं रुन्ध्यात् वा अकुलौघे अथ व्यत्यासेन अन्तस्थसैन्यं युद्धं विदध्यात् इज्यारौ काव्यवक्रस्थ सौम्यौ दुर्गे दिक्षु क्रमेण भङ्गं निर्दिशन्ति ।

वि जया—ज्ञः=बुधः, आरः=भौमः ज्ञश्च आरश्च ज्ञारः तौ ज्ञारौ एतौ चेत् स्तम्भनक्षत्रगतौ स्तः प्रवेश कोणभेषु मध्ये कस्मिश्चित् वा स्याताम् । चन्द्रस्तु जीवपक्षगः प्रवेशे स्यात् अर्थात् राहुकालानलचक्रे जीवत्पक्षगानि यानि नक्षत्राणि तेषां मध्ये कस्मिश्चित् प्रवेशे कोणनक्षत्रे वा स्यात् तदा दुर्गं=कोटं रुन्ध्यात् अवरुद्धति इति भावः । अर्थात् यायी स्वकीय सैन्येन शत्रुदुर्गं अकुलगणे वेष्टयेत् । अथ व्यत्यासे सति तु अन्तस्थस्य स्थायिनः सैन्यं यायिना सह युद्धं विदध्यात् । व्यत्यासश्च एवं बुधभौमौ स्तंभर्क्षे प्रवेशर्क्षे च न स्यातां एवं चन्द्रः मृतगः न तु जीवत्पक्षगः न च प्रवेशर्क्षे किन्तु निर्गमर्क्षे कुलगणे च तदा स्थायि युद्धं करोति, प्राच्यादिषु चतस्रिषु दुर्गस्य इज्यः=गुरुः, आरः=भौमः, काव्यः=शुक्रः वक्रस्थः सौम्यः वक्रगति बुधेतिभावः । एते चेत् क्रमेण स्युः तदा तस्मिन् दुर्गे भङ्गं निर्दिशन्ति । उदाहरणार्थं चक्रं द्रष्टव्यम् ।
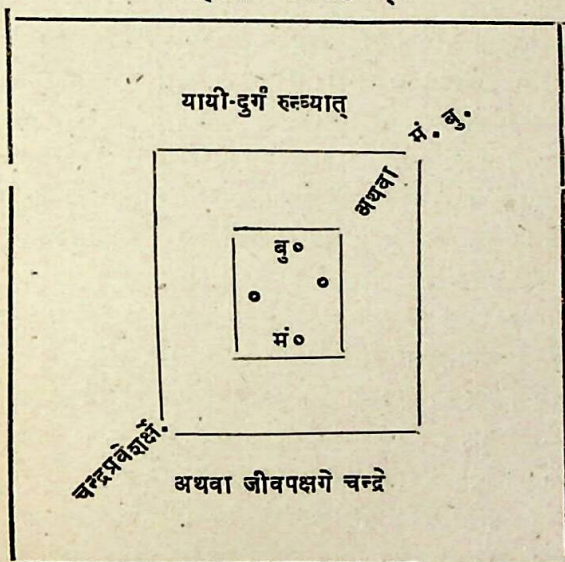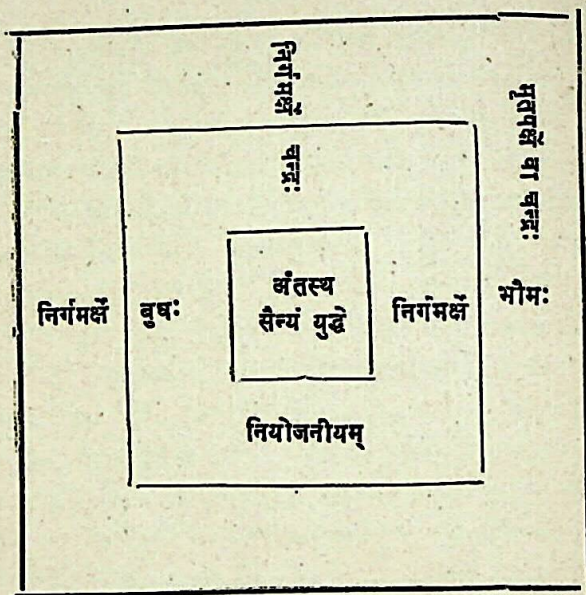
भाषा—यदि बुध और मंगल स्तम्भ के नक्षत्रों में अथवा प्रवेश के नक्षत्रों में हों और चन्द्रमा जीवपक्ष के नक्षत्रों में अथवा प्रवेश के नक्षत्रों में हो तो आक्रमणकारी राजा की सेना पहले किले पर आक्रमण करती है और इससे विपरीत अर्थात् बुध और मंगल निर्गमन नक्षत्रों में हों और चन्द्रमा मृतपक्ष अथवा निर्गम नक्षत्रों में हो तो स्थायी राजा अपनी शत्रुसेना को परास्त करने के लिए आक्रमण करता है। यदि पूर्व दिशा में गुरु, दक्षिण दिशा में मंगल, पश्चिम में शुक्र और उत्तर दिशा में वक्री बुध हों तो ये अपनी-अपनी दिशाओं का नाश करते हैं। अर्थात् तत्तद् दिशाओं की सेना नष्ट होती है॥ ६३–६४॥

यत्र क्रूरस्तेन युक्तः शशी वा खण्डिस्तत्रैतत् पथे च प्रवेशः।
क्रूराः स्तंभर्क्षे यदान्तस्तदानीं दुर्गं मुक्त्वा याति दुर्गाधिनाथः॥ ६५॥

अन्वयः—यत्र क्रूरः तेन युक्तः शशी वा खण्डिस्तत्रैतत्पथे च प्रवेशः। क्रूराः स्तम्भर्क्षे यदांतस्तदानीं दुर्गाधिनाथः दुर्गं मुक्त्वा याति॥ ६५॥

विजया—यत्र यस्मिन्दिशि क्रूरः क्रूरग्रहः वा क्रूरग्रहेण सहितः शशी चन्द्रः तत्र तस्मिन् स्थाने खण्डिः दुर्गभंगः तेनैव मार्गेण शत्रोः प्रवेशः स्यादिति भावः।

यदा च क्रूराः क्रूरग्रहाः स्तंभनक्षत्रे अन्तर्मध्ये स्युस्तदानीं दुर्गाधिनाथः दुर्गं त्यक्त्वा अन्यत्र याति पलायनं करोतीति भावः ॥ ६५ ॥

भाषा—किले के जिस भाग पर क्रूरग्रह हों, अथवा क्रूरग्रह के साथ चंद्रमा हो, उस स्थान से शत्रुराजा की सेना दुर्ग तोड़कर प्रवेश करती है। तथा यदि किले के अन्तःभाग पर क्रूर ग्रह हों तो किले में स्थित राजा भागकर अन्यत्र शरण लेता है ॥ ६५ ॥
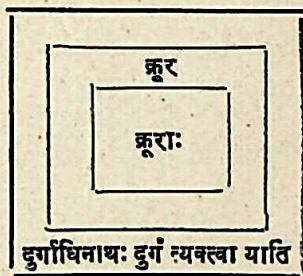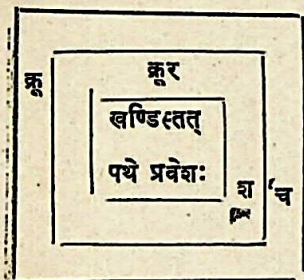
निर्गत्यर्क्षे बाह्यगे वक्रितश्चेत्
क्रूरः खण्डिः निश्चितं तत्र कुर्यात्।
वप्रस्थोन्तर्हन्ति मध्यं प्रवेश-
र्क्षेवक्री चेद्धन्ति बाह्यस्थ सैन्यम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—चेत् क्रूरः बाह्यगे निर्गत्यर्क्षे वक्रितः तत्र निश्चितं खण्डिः कुर्यात्। वप्रस्थोन्तर्हन्ति मध्यं प्रवेशर्क्षे वक्री चेत् बाह्यस्थ सैन्यं हन्ति।

विजया—चेत् क्रूरः = क्रूरग्रहः, पापग्रहः बाह्यगे = बाह्यावर्तमाने निर्गत्यर्क्षे, निर्गमनक्षत्रे वक्रितः तिष्ठेदित्यर्थः तत्र तस्मिन्स्थाने निश्चितं खण्डिः कोटभंगं कुर्यात्। वप्रस्थः कोटस्थः वक्रीक्रूरश्चेत् तदा अन्तःकोटमध्यं हन्ति नाशयति। मध्ये कोटमध्ये प्रवेशर्क्षे चेत् वक्रोक्रूरस्तदा बाह्यस्थसैन्यं यायिसैन्यं च हन्ति।

भाषा—यदि क्रूरग्रह या वक्री शुभग्रह भी निर्गमनक्षत्र पर हों तो उसी स्थान पर कोट भंग होता है। यदि क्रूरग्रह कोट पर हों तो कोट के मध्यवालों को तथा प्रवेश के नक्षत्रों पर हों तो बाहर की सेना को नष्ट करता है ॥ ६६ ॥
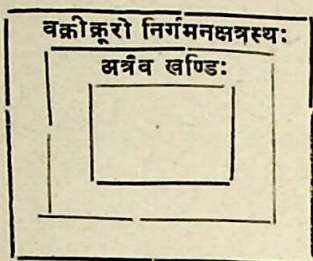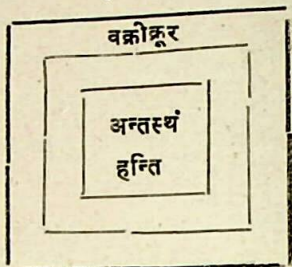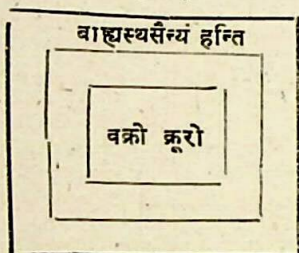
पुनश्च विशेष:—

> दुर्गे तदीशभजयोरिति कोटयोस्तु-
> भङ्गं विचार्य दिशि तत्र लगन्तु बाह्या: ।
> आभ्यन्तरा बलपभोत्थितचक्रदोषे-
> सेनान्यमन्यमुपदिश्य दिशोप्यवन्तु ॥ ६७ ॥

अन्वय:—सुगमम् ।

विजया—दुर्गे=दुर्गस्य, तत् ईश: तदीश: दुर्गेश इत्यर्थ: तयो भजयो इति दुर्ग दुर्गेशस्य च ये भे तयोरैशान्यादि दिशिक्रमेण लेखनेन चोत्पन्नेन कोटचक्रे यस्यां दिशि भंगस्य संभावना वर्तते तस्यां दिशि बाह्या यायिनो लगन्तु । तत्र लग्नाश्च दुर्गं गृह्णन्तु । आभ्यन्तरा दुर्गाधिपतिस्तु स्वबलयो य सेनापति: तस्य यद् नक्षत्रं तत उत्थितो य: कोटचक्रदोष: तं विज्ञाय अन्य सेनापतिं नामपूर्वकं कृत्वादिशोऽपि दुर्गज्ञा अवन्तु रक्षन्तु ।

भाषा—कोटचक्र के अनुसार स्थापित नक्षत्रों के अनुसार दुर्ग और दुर्गेश के नाम के अनुसार कोटचक्र से जहाँ पर भंग होने की सम्भावना हो वहीं पर शत्रु को आक्रमण करना चाहिए। इसी प्रकार दुर्गस्थ राजा अपने सेनापति के नाम के अनुसार जहाँ पर ग्रह दुर्बल हों उस स्थान की रक्षा पूरी तरह करना चाहिए[1] ॥ ६७ ॥

इति समरसारे कोटचक्रप्रकरणम् ॥

---

१. ग्रन्थान्तरे—(कोटचक्रम्)

अथातः संप्रवक्ष्यामि कोटचक्रस्य निर्णयम्।
स्तोकारिः कुरुते यत्र भूरिसैन्यपराभवम् ॥ १ ॥

यस्याश्रयबलादेव राज्यं कुर्वन्ति भूतले।
विग्रहं चतुराशासु सीमास्थैः शत्रुभिः सह ॥ २ ॥

विषमं दुर्गमं घोरं चक्रं भीरुभयावहम्।
कपिशीर्षैस्तु शोभाढ्यं रौद्राट्टालकमंडितम् ॥ ३ ॥

प्रतोली यस्य कालास्यात्परिखा कालरूपिणी।
रणकर्तुकृताटोपं डिकुली यंत्रयंत्रितम् ॥ ४ ॥

मुशलैर्मुद्गरैः पाशैः कुंतखड्गैर्धनुः शरैः।
संयुतैः सुभटैः शूरैरिति दुर्गं समादिशेत् ॥ ५ ॥

चक्रोपयुक्तफलमप्याह—

बुधशुक्रेन्दुजीवाश्च सदा सौम्यग्रहा मताः।
शन्यर्कराहुमाहेयाः केतुः क्रूरग्रहा मताः ॥ १ ॥

क्रूरैर्भङ्गो जयः सौम्यैर्मिश्रैर्मिश्रफलं मतम्।
विचार्य कुरुते युद्धं कोटचक्रे स्वरोदयो ॥ २ ॥

बाह्यभं मध्यभेतस्याः क्रूरा हानिकरा मताः।
बाह्यभं मध्यभेतस्याः सौम्या विजयमादिशेत् ॥ ३ ॥

दुर्गमध्ये गतेसूर्ये जलदोषः प्रजायते।
चन्द्रे भङ्गः कुजे दाहो बुधे बुद्धिबला नराः ॥ ४ ॥

सर्वतो भद्रचक्रमाह—

पूर्वोदीचीर्लिखालीर्नयनय गणिताः कन्दकोष्ठेष्वथेशात्-
कोणेतोयस्वरान्वह्न्युडुत इह दिगालीषु भान्यन्तरा तु ।
नारीवर्णान् पुरोक्तानबकहडमुखानंतरास्मावृषादीन्-
खेटाच् संबन्धिवारैः सह लिख च तिथीन् मध्यतो नन्दिकादीन् ॥६८॥

ऐन्द्रयादि मध्यभचतुष्कवेधतो वेधमादिशेत्क्रमशः ।
घङछां षणठां धफढां थझञमिति सर्वतोभद्रम् ॥ ६९ ॥

अन्वय—सुगमम् ।

विजया—पूर्वाश्च उदीच्यश्च पूर्वोदीच्यः ताः पूर्वोदीचीः आलीः पंक्तिः रेखा लिख । कथं नय नय गणिता दश दश संख्यया । अर्थात् पूर्वापरा दश रेखाः एवं च दक्षिणोत्तरा उर्ध्वाधरा वा दशरेखा कर्त्तव्या । अनेन विधिना कन्द ८१ कोष्ठकेषु जातेषु उत्पन्नेषु, ईशात् ईशानकोणतः कर्णे कर्णमार्गैः तोय १६ स्वरान् षोडशस्वरान् अकारादिकान् लिख । तदनन्तरम् वह्नि कृतिका उडुतः नक्षत्रारम्य इह दिगालिषु दिग्पंक्तिषु अष्टाविंशति नक्षत्राणि च लिख इति सर्वत्रान्वयः । तदनन्तरम् पुरोक्तान् पूर्वोक्तान नारी २० विंशति वर्णान् अ ब क ह ड मुखान् लिख । यथा पूर्वस्यां अ ब क ह ड दक्षिणस्यां दिशि म ट प र त, पश्चिमे न य भ ज ख एवं चोदग्दिशि ग श द च ल इति विंशति वर्णान् लिखेत् । तदनन्तरं वृषादितः त्रीणि-त्रीणि नक्षत्राणि पूर्वादितः लिखेत् । यथा पूर्वे वृष मिथुन कर्क, दक्षिणे सिंह कन्यातुला, पश्चिमे वृश्चिक धनु मकरः तथा चोत्तरस्यां कुम्भ मीन मेष इति त्रीणि-त्रीणिनक्षत्राणि लिखेत् । ततो सह तिथीन् खेटासम्बन्धिवारान् लिखेत् । यथा पूर्वस्यां नन्दा तत्रैव सूर्यभौमौ, दक्षिणे भद्रा तत्रैव बुधचन्द्रौ, पश्चिमायां जया तत्रैव जीवः, उत्तरस्यां रिक्ता तत्रैव शुक्रः एवं मध्ये पूर्णा तत्रैव च शनिः लिखेत् । एवं

वाक्पतौ दुर्गमध्यस्थे सुभिक्ष प्रचुरं जलम् ।
चलचित्तनराः शुक्रे मृत्युरोगौ शनैश्चरे ॥ ५ ॥

राहौ मध्यगते दुर्गे भेदभङ्गौ महद्भयम् ।
केतौ मध्यगते तत्र विषदानं गढाधिपे ॥ ६ ॥

एवं च कोटबाह्येऽपि बोध्यम् ।

विधिना एकाशीति पदात्मकं सर्वतोभद्रचक्रं सम्पन्नं भवेत्। नन्दादि अंकैः सह खेटात्सम्बन्धिवारैः सह खेटानां-अचः स्वरास्तत्सम्बन्धिनो ये वारास्तैः सह तिथीन् लिखेत्। यथा रविभौमयो अकारः स्वरस्तस्य वारौ रविभौमौ, नंदायां लेख्यौ। बुध चन्द्रयो इकारस्वरस्तत्सम्बन्धिनौ वारौ बुधचन्द्रौ भद्रायां लेख्यौ। गुरोः स्वर उकारस्तस्मात् जयायां गुरुर्लेख्यः। शुक्रस्य एकारस्वरस्तेन रिक्तायां शुक्रोलेख्यः। शने ओकारस्वरः तेन पूर्णास्थाने च शनिर्लेख्यः। ऐन्द्रयादि चतुर्षु दिक्षु क्रमेण भचतुष्कवेधतः यथा पूर्वे आर्द्रा, दक्षिणस्यां हस्त, पश्चिमायां पूर्वाषाढ़ा, उत्तरस्यां उत्तराभाद्रपदा वेधतः क्रमशः वेधमादिशेत् तत्रैव क्रमशः घ ङ छा, ष ण ठा, ध फ ढां, थ झ ञ इत्यपि स्थाप्यम् तेन सर्वतोभद्रचक्रं सुसम्पन्नं भवेत्।

तदेवाह— आर्द्रा वेधे सति घ ङ छा विद्धयन्ते, हस्तवेधे ष ण ठा विद्धयन्ते, पूर्वाषाढ़ा वेधे ध फ ढा विद्धयन्ते, उत्तराभाद्रपदा वेधे थ झ ञा विद्धयन्ते इति सर्वतोभद्रं वेधकृत् ज्ञेयम्॥

भाषा—अब सर्वतोभद्र निर्माण की विधि और वेधज्ञान को बतला रहे हैं। पहले दश रेखा पूर्वापर दिशा में तथा दश रेखा उर्ध्वाधर खींच ले। इस प्रकार उर्ध्वाधर और तिर्यक् दश-दश रेखाओं के द्वारा ८१ कोष्ठक का सर्वतोभद्र चक्र बन जाता है। इस चक्र में क्रमशः पहले ईशानकोण से आरम्भ करके कोणों में ही कर्ण मार्ग से १६ स्वरों की स्थापना करे। बाद में अभिजित को लेकर २८ नक्षत्रों की स्थापना चारो दिशाओं में करे। अर्थात् ईशान में अ स्वर तथा अग्नि-कोण में आ स्वर के मध्य में जो ७ कोष्ठक रिक्त हैं उनमें कृतिका से आरम्भ कर श्लेषा पर्यन्त ७ नक्षत्रों को। इसी प्रकार दक्षिण में मघादि ७ नक्षत्रों को, पश्चिम में अनुराधादि ७ नक्षत्रों को तथा उत्तर में धनिष्ठादि ७ नक्षत्रों की स्थापना करे। तदनन्तर अ ब क ह आदि २० वर्णों की स्थापना नक्षत्र पंक्ति से नीचे की पंक्ति में करे अर्थात् ईशान कोण में द्वितीय पंक्ति में उ स्वर वर्ण तथा अग्निकोण में ऊ स्वर वर्ण के मध्य में पूरब में अ ब क ह ड, दक्षिण में म ट प र त, पश्चिम में न य भ ज ख, उत्तर में ग श द च ल। इन २० वर्णों को स्थापित करने से बाह्य की दो कोष्ठकों की पंक्ति पूर्ण हो जाती है। तदनन्तर इन वर्णों के नीचे के कोष्ठकों में पूर्वादि क्रम से वृषादि तीन-तीन राशियों को तथा उनके नीचे शेष कोष्ठक में पूर्वादि क्रम से नन्दादि तिथियों को तथा स्वर के अनुसार उनके साथ

ग्रहों की स्थापना करे। यथा पूरब में नन्दा तिथि के साथ अ स्वरवाले सूर्य मंगल को। दक्षिण दिशा में भद्रा तिथि के साथ इ स्वर वाले चन्द्रमा और बुध को। पश्चिम दिशा में जया तिथि के साथ उ स्वर वाले गुरु को। उत्तर दिशा में रिक्तातिथि के साथ ए स्वर वाले शुक्र को और मध्यभाग में पूर्णातिथि के साथ ओकार स्वर वाले शनि को लिखे। तदनन्तर चारो दिशाओं के वेध नक्षत्रों के साथ घ ङ छ आदि चारो दिशाओ में लिखे। जैसे पूर्व में आर्द्रा के साथ घ ङ छ को, दक्षिण में हस्त के साथ ष ण ठां, पश्चिम में पूर्वाषाढा के साथ ध फ ढ और उत्तर में उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के साथ में थ झ ञ लिखे। इस प्रकार सर्वतो-भद्र-चक्र जिसके द्वारा वेधादि का ज्ञान करते हैं बनेगा॥ ६८–६९॥

सर्वतोभद्रचक्रम्

घ ङ छां

अ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	आ
भ	उ	अ	व	क	ह	ड	ऊ	म
अ	ल	ऌ	वृ	मि	क	ऌ	म	पू
रे	च	मे	ओ	नन्दा सू मं	औ	सि	ट	उ
उ	द	मी	रिक्ता शु	पूर्णा श	भद्रा बु च	क	प	ह
पू	श	कु	अः	जया वृ	अं	तु	र	चि
श	ग	ऐ	म	घ	वृ	ए	त	स्वा
ध	ऋ	ख	ज	भ	य	न	ऋ	वि
ई	श्र	अभि	उ	पू	मू	ज्ये	ऽनु	इ

ठ ढ ष (left)

थ झ ञ (right)

ध फ ढां

प्रथमाग्र्यभस्थखेटो विध्येत्कोणस्थितानचश्चतुरः ।
तिथिमपि पूर्णां न शुभः क्रूरजवेधः शुभः शुभजः[1] ॥ ७० ॥

अन्वयः—प्रथमाग्र्यभस्थखेटो कोणस्थितान् चतुरः च पूर्णां तिथिमपि विध्येत् । (अतः) शुभः शुभजः क्रूरजवेधो न शुभः ॥ ७० ॥

विजया—कोणस्थितान् इति उभयत्रान्वयः । कोणस्थितान् प्रथम-अग्र्य-भस्थ खेटः कोणस्थितान् चतुरः अचः विध्येत् । यथैशान्यां प्रथम नक्षत्रं भरणी, अग्र्यनक्षत्रं कृत्तिकास्थो ग्रह ईशानकोणस्थान् अ उ ऌ ओ स्वरान् पूर्णातिथि सहितान् विद्धयेत् । आग्नेय्यां श्लेषामघास्थो ग्रहः आग्नेयस्थितान् आ ऊ ॡ औ स्वरान् पूर्णातिथिश्च विद्धयेत् । नैऋत्यां विशाखानुराधास्थो ग्रहः नैऋतिस्थितान् इ ऋ ए अं स्वरान् पूर्णातिथि सहितान् विद्धयेत् । वायव्यां श्रवणधनिष्ठास्थो ग्रहः वायव्यस्थितान् ई ॠ ऐ अः स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्धयेत् । तत्र क्रूरवेधः न शुभः शुभकृत वेधस्तु शुभफलदायकः ॥ ७० ॥

भाषा—कोणस्थ नक्षत्रों में स्थित ग्रह उस कोण के चारों स्वरों के साथ पूर्णातिथि का भी वेध करते हैं । यथा ईशानकोण में भरणी और कृतिका इन दोनों नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र पर यदि ग्रह हो तो वह ईशानकोण में स्थित अ उ ऌ ओ इन चार स्वरों के साथ पूर्णातिथि का भी वेध करता है । इसी प्रकार अग्निकोण में स्थित श्लेषा मघा पर स्थित ग्रह अग्निकोण में स्थित स्वर आ ऊ ॡ औ इन चार स्वरों के साथ पूर्णातिथि को, नैऋत्य कोण स्थित विशाखा या अनुराधा पर स्थित ग्रह नैऋत्य कोण के स्वर इ ऋ ए अं इन चार स्वरों के साथ पूर्णातिथि को तथा च वायव्यकोणस्थित श्रवण या धनिष्ठा नक्षत्र पर स्थित ग्रह, वायव्यकोणस्थित ई ॠ ऐ अः इन चार स्वरों के साथ ही पूर्णातिथि का भी वेध करता है । वेध यदि क्रूर ग्रहों का हो तो अशुभ तथा शुभ ग्रहों का हो तो शुभ फलदायक होता है ॥ ७० ॥

---

१. कुछ आचार्यों ने इसे 'संसार चक्र' तो कुछ ने 'संसार दीपचक्र' भी कहा है । इसकी संघटना है, जिसके अन्तर्गत १६ वर्ण २८ नक्षत्र २० वर्ण १२ राशियाँ १५ तिथियाँ, ७ दिन और घ ङ छ, ष ण ठ, ध फ ढ एवं थ झ ञ का भी इसमें समावेश हो जाने से मात्र इस एक ही चक्र के द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक स्तर के प्रत्येक प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है ।

वक्रशीघ्रग्रहवेधमाह—

वक्री दक्षं कर्णगत्याथ वामं शीघ्राविध्येदीक्षतेग्रे समस्तु ।
नित्यं वक्री राहुकेतू इनेन्दू शीघ्रौ नित्यं दृग्व्यधौ तुल्यरूपौ ॥ ७१ ॥

अन्वयः—वक्री कर्णगत्या दक्षं अथ शीघ्रां वामं विध्येत् । समस्तु अग्रे ईक्षते । राहुकेतू नित्यं वक्रौ, इनेन्दू नित्यं शीघ्रौ, दृग्व्यधौ तुल्यरूपौ ॥ ७१ ॥

विजया—वक्री शुभोऽशुभो वा कर्णगत्या कोणरीत्या दक्षं स्वपश्चात् भागं विध्येत् । अथ शीघ्रगति ग्रहो वामं स्वाग्रिमभागं कोणरीत्यैव विध्येत् । शीघ्रगतित्वं चार्के द्वितीयस्थानगे समः समगतिस्तु ग्रहः अग्रे स्वसम्मुखे नेक्षते । अतः सम्मुख एव तद्दृष्टरूपो वेधः । अथ नियतशीघ्रग्रहानाह—नित्यमिति । राहुकेतू नित्यं सर्वदैव वक्रावतोऽनयोर्दक्ष एव कर्णगत्या वेधः । रवीन्दू नित्यं शीघ्रगती अतोऽनयोश्च वामवेधः दृग्व्यधौ दृष्टिवेधौ तुल्यरूपौ सर्वकाले समानफलावेव नान्यथा भवतः ॥ ७१ ॥

भाषा—वक्रीग्रह दक्षिण कर्ण मार्ग से तथा शीघ्रगति (मार्गी) ग्रह वाम कर्णगति से तथा सम ग्रह सम्मुख मार्ग से वेध करते हैं । राहु केतु सदा वक्री तथा सूर्य चन्द्र सतत मार्गी (शीघ्र) ग्रह एवं अन्य पंचतारा ग्रह सम अर्थात् कभी मार्गी और कभी वक्री होते रहते हैं । अतः राहु केतु सदैव दक्षिणकर्ण मार्ग से तथा सूर्य चन्द्रमा सदा वामकर्ण मार्ग से वेध करते हैं ॥ ७१ ॥

ग्रहवेधफलमाह—

उद्वेगार्थविनाशरोगमृतिदा विध्यंत एकादयो
वर्णेहानि उडौ भ्रमोऽचि तु रुजो विद्धे तिथौ भीरपि ।
राशौ विघ्नततिश्च पंचसु मृतिर्विध्यञ्ज्ञ ईज्यः सितः-
प्रज्ञां सर्वसुखं रतिं विदधते वक्रा अतीष्टा इमे ॥ ७२ ॥

अन्वयः—एकादयो विध्यंत (तदा क्रमेण) उद्वेग, अर्थहानि, विनाश, रोग, मृतिदा, वर्णेहानि उडौ भ्रमः अचि तु रुजो विद्धे तिथौ अपि भीः स्यात् अग्रे सुगमम् ॥ ७२ ॥

विजया—एकादयो ग्रहा विध्यंत तदा क्रमेण उद्वेग अर्थहानिः विनाश, रोग मृतिदा च भवन्ति । यथा एकपापग्रहविद्धे उद्वेगः, द्विग्रहविद्धेनार्थहानिः द्रव्य-

नाशः, त्रिग्रहवेधेन रोगः, चतुर्ग्रहवेधेन मरणं भवति। वर्णे अक्षरे पापग्रहविद्धेन हानिः द्रव्य बल पक्षादि हानिर्वा भवति। उडौ नक्षत्रे पापविद्धे सति भ्रमः चित्त-विभ्रमो च भविष्यति। अचि स्वरे पापविद्धे रुजः रोगः। तिथौ पापविद्धे सति भीः भयं स्यात्। राशौ पापविद्धे विघ्नततिः विघ्नपरम्परा भवति। चेत् पंचसु वर्ण, नक्षत्र, स्वर, तिथि राशिषु एककालेन विद्धेषु मृतिः मरणं भवति। ज्ञः बुधो वेधेन प्रज्ञां बुद्धि, ईज्य, गुरुर्वेधेन सर्वसुखं, सितः शुक्रोवेधेन रतिं प्रीतिं च ददाति। इमे शुभग्रहाश्चेत् वक्राः विध्यन्ते तर्हि अतीष्टाः महनीयेति भावः।

भाषा—यदि एक पापग्रह से वेध होता हो तो उद्वेग, दो से अर्थनाश, तीन से रोग और चार पापग्रहों से वेध होता हो तो मृत्यु होती है। इसी प्रकार पापग्रहों के द्वारा वर्ण (नामाक्षर) का वेध हो तो द्रव्यनाश, नक्षत्र का वेध हो तो भ्रम, स्वर का वेध हो तो रोग, तिथि का वेध हो तो भय और राशि का वेध होने पर विघ्न पर विघ्न होता है तथा इन पाँचों पर यदि एक साथ पापग्रहों का वेध हो तो मृत्यु होती है। वेध करनेवाला शुभग्रह बुध हो तो बुद्धि का विकास होता है, बृहस्पति वेध करता हो तो सभी प्रकार का सुख देनेवाला और शुक्र यदि वेधकारी हो तो रति स्त्रीसुख को देनेवाला तथा मंगल सम्पन्न करने वाला होता है।

विशेष—इस चक्र के द्वारा मानव-मात्र के सुख-दुःख, हानि-लाभ, ह्रास-वृद्धि, जीवन-मरण आदि सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है। इसके द्वारा वस्तुओं की तेजी-मन्दी भी सुगमता से देखी जा सकती है।

क्रूरा वक्रेऽतीव दुष्टा रविः स्याद्राशौ सा दिक्सदिश्यास्तमेति।
प्राच्या ईशाशास्थिताश्च क्रमोऽयं सर्वाशासु ज्ञायतां बुद्धिमद्भिः॥ ७३॥

अन्वयः—क्रूरा वक्रेऽतीवदुष्टा रविः यद्राशौ स्यात् सा दिक्सदिश्यास्तमेति। ईशाशास्थिताश्च प्राच्या सर्वाशासु अयं क्रमः बुद्धिमद्भिः ज्ञायताम्॥ ७३॥

विजया—क्रूरा=पापग्रहाः वक्रे=वक्रिणः चेदतीव दुष्टाः=कुत्सितफल-दायकाः स्युः। रविः=सूर्यः, यस्मिन् राशौ=यद्दिगलिखितेषु राशिषु स्यात् सा दिक् सदिश्यास्तमेति यथा चक्रे प्राच्यां वृषमिथुनकर्कटा लिखितास्तेषां मध्ये चेदे-कस्मिन्राशौ तिष्ठेत्तदा सा प्राच्यादि दिक् सदिश्या 'दिशिभवं दिश्यं' नक्षत्र, स्वर, वर्ण, राशि, तिथि, वारादि सह वर्तत इति' सदिश्या आशा नक्षत्राद्यैर्युक्ता सा

दिगस्तगा स्यादित्यर्थः। विदिक्षु ये स्वराद्यास्ते कथमस्तगा ज्ञेया इत्याशंकायां विदिशां दिक्ष्वेवान्तर्भावमाह—प्राच्येति। ईशाशा ऐशानी तत्र स्थिता अत्र प्राच्याः प्राचीदिगस्ता ज्ञेयाः। आग्नेयीस्था दक्षिण दिग्गता ज्ञेयाः। एवं नैर्ऋतिस्थाः प्रतीचीगताः। वायव्यस्था चोदीची गता ज्ञेया ॥ ७३ ॥

भाषा—क्रूर ग्रह वक्री हों और वेध करते हों तो अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध होते हैं। सूर्य वृषादि जिस राशि पर हो और वह राशि जिस दिशा में हो उस दिशा के साथ ही साथ उस दिशा में स्थित स्वर वर्ण नक्षत्रादि सब अस्त होते हैं। और कोणस्थ स्वर वर्णादि भी उक्त दिशा के साथ अस्त होते हैं। जैसे—ईशानकोणस्थ पूर्व में, अग्निकोणस्थ दक्षिण में, नैऋत्यकोणस्थ पश्चिम और वायु कोणस्थ उत्तर में अस्त समझना चाहिए।

उदाहरण—सूर्य यदि वृषराशि पर है तो पूर्वदिशा के साथ ही साथ पूर्व दिशा में स्थित स्वर-वर्ण नक्षत्र राश्यादि सब अस्त हैं साथ ही ईशान कोणस्थ स्वर-वर्णादि का भी अस्त होगा। अस्तदिशा का फल आगे दिया गया है।

अस्ताशास्थाजाद्यैः क्रूरव्यधवशात्फलं वाच्यम्।
उदिताशास्थैः सौम्यव्यध इव फलमादिशेच्छ्रेुभम् ॥ ७४ ॥

अन्वयः—सुगमम्।

विजया—अस्ताशा = अस्तदिशा सूर्याक्रान्ता दिक् तस्यां स्थितैरजाद्यैः स्वरवर्णतिथिवाराद्यैः क्रूरग्रह वेधवत् दुष्टफलं वाच्यम्। उदिताशा सूर्याक्रान्तदिग्व्यतिरिक्ता च दिशा, तत्र स्थितैः स्वराद्यैः सौम्यग्रहवत् श्रेष्ठं फलं वाच्यम्। एवं अस्तदिगस्था सत्फलदा अपि असत्फलदाः भवन्ति तथा उदितदिगस्थासु असत्फलदा अपि सत्फलदा भवन्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥

भाषा—सूर्याक्रान्त दिशा को अस्तदिशा तथा शेष दिशाओं को उदित दिशा कहा है। अस्तदिशा में स्थित स्वरादिकों का फल पापग्रह वेध की भाँति अशुभ होता है तथा उदितदिशा में स्थित स्वरादिकों का सौम्यवेध की भाँति श्रेष्ठफल कहना चाहिए। अर्थात् शुभफल देनेवाले स्वर जो वर्णादिक हैं वे यदि अस्तदिशा में पड़ें तो अशुभ फलदायक सिद्ध होते हैं तथा अशुभ फलदायक जो स्वरवर्णादिक हैं उनका फल उदित दिशा में होने से शुभ होता है ॥ ७४ ॥

हानी रुक्कलहोपि पीडित इह स्याज्जन्मभेऽस्मान्नये-
कर्मासिद्धिरथो भिदाचयमिते द्रव्यक्षयः स्याज्जये।
गौरे देहरुजः शरे सुखहती राज्ञोथ देशोडुनि-
क्षुण्णे जात्यभिषेकयोरपि तयोस्तत्तद्भयं निर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इह जन्मभे पीडितः। हानि रुक् कलहो स्यात्। अस्मात् नये कर्मासिद्धिः अथ चयमिते भिदा जये द्रव्यक्षयः स्यात्। गौरे देहरुजः, शरे सुखहती अथ राज्ञो देशोडुनि जात्यभिषेकयोः क्षुण्णे अपि तयोः तत्तद्भयं निर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

विजया—इह अस्मिन्सर्वतोभद्रचक्रे जन्मभे जन्मनक्षत्रे पीडिते=क्रूरग्रह-विद्धे सति हानिः द्रव्यादेः, रुक् रोगः, कलहो मित्राद्यैः एतानि च फलानि भवन्ति। अस्मात् जन्मनक्षत्रात् नये १० दशमर्क्षे पीडिते कर्मस्य असिद्धिः अभिलषितकार्यस्य हानिः। अथ अनन्तरं चय १६ मिते जन्मभात्षोडशमिते नक्षत्रे विद्धे सति भिदा-भेदः इष्टवर्गेण सह विरोधः स्यादिति भावः। पुनः जये १८ अष्टादश संख्यक नक्षत्र वेधेन द्रव्यक्षयः अर्थहानिः गौरे २३ देहरुजः रोगः, शरे २५ विद्धे सति सुखहती सुखनाशः स्यादिति। अथ राज्ञः देशोडुनि अ ब क ह डा चक्रे यत्तु देशनक्षत्रं तस्मिन् पापग्रहविद्धे। तथा जात्यभिषेकयोः जातिः क्षत्रियादिः तद्भं अ ब क ह ड चक्रं जातं। एतच्चक्रजमेव यद्राजाभिषेककालीन नामनक्षत्रमेतदभिषेकभम्। एतेषु विद्धेषु तत्सम्बन्धिनां देशः–जाति–राज्यानां भयं निर्दिशेत्।

भाषा—इस सर्वतोभद्रचक्र के अनुसार यदि पापग्रहों के द्वारा जन्मनक्षत्र का वेध हो तो हानि, रोग और कलह होता है। जन्म नक्षत्र से दशवें नक्षत्र का वेध हो तो कार्यहानि, सोलहवें नक्षत्र का वेध हो तो भेद परस्पर मनोमालिन्य, १८वें नक्षत्र का वेध हो तो द्रव्य का नाश, २३वें नक्षत्र का वेध हो तो रोग और २५वें नक्षत्र का वेध हो तो सुख का नाश होता है। यदि राजा के देश नक्षत्र का, राज्यभिषेक, कालिक नक्षत्र का, अथवा किसी जातिविशेष के नाम नक्षत्र का वेध हो तो उस राजा, देश, जाति के लिए भय उत्पन्न होता है। इसका विचार पहले दिए गये अ व क ह डा चक्र के द्वारा करना चाहिए ॥ ७५ ॥

॥ इति समरसारे सर्वतोभद्रप्रकरणम् ॥

ग्रन्थान्तरे सर्वतोभद्रचक्र प्रशंसा:—

विख्यातं सर्वतोभद्रं चक्रं त्रैलोक्यदीपकम् ।
यस्मिन्नृक्षे स्थितः खेटस्ततो वेधत्रयं भवेत् ॥ १ ॥
ग्रहदृष्टिवशेनाऽत्र वामसम्मुखदक्षिणे ।
भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं क्रूरग्रहेण भम् ।
शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ २ ॥
सूर्यभुक्ता उदीयन्ते सुर्यग्रस्तास्तगामिनः ।
ग्रहा द्वितीयगे सूर्ये स्फुरद्विबाः कुजादयः ॥ ३ ॥
समा तृतीयगे ज्ञेया मन्दा भानौ चतुर्थगे ।
वक्रा स्यात्पंचषष्ठेऽर्के त्वतिवक्राऽष्टसप्तमे ॥ ४ ॥
नवमे दशमे भानौ जायते कुटिला गतिः ।
द्वादशैकादशे सूर्ये भजते शीघ्रतां पुनः ॥ ५ ॥
अदृश्यतां पुनर्लोके व्रजंत्यर्कगता ग्रहाः ।
अवर्णादि स्वरौ द्वौ द्वावेकत्रैधे द्वयोर्व्यधः ॥
स्वरयुक्तात्मनोवेधश्चानुस्वारविसर्गयोः ॥ ६ ॥
बवौ शसौ षखौ चैव ज्ञेयौ ङञौ परस्परम् ।
एकेन द्वितयं ज्ञेयं शुभाशुभखगव्यधे ॥ ७ ॥
प्रश्नकाले भवेद्विद्धं यल्लग्नं क्रूरखेचरैः ।
तद्दुष्टं शोभनं सौम्यैर्मिश्रैर्मिश्रफलं मतम् ॥ ८ ॥
मण्डलं नगरं ग्रामो दुर्गं देवालयः पुरम् ।
क्रूरैरुभयतो विद्धं विनश्यति न संशयः ॥ ९ ॥
तैलं भाण्डं रसो धान्यं गजाश्वादिचतुष्पदम् ।
सर्वं महर्घतां यान्ति यत्र क्रूरो व्यवस्थितः ॥ १० ॥

अथ ऋणधनशोधनमाह—

साध्याङ्का अ क ठ वादयस्ततत्तुं नगभूभानुनिम्नगा दाप्ता ।
रुरुमननरयनभवगाः साधके ऋणमधिकशेषतो दाप्ती ॥ ७६ ॥

अन्वयः—ततत्तुं नगभूभानुनिम्नगा अ क ठ वादयः साध्याङ्काः दाप्ता । रुरुमननरयन भवगाः । साधके दाप्तौ शेषतो ऋणमधिकम् बोध्यम् ।

विजया—साध्यसाधकानामङ्कानां योगे दाप्तौ सति यत्राङ्काऽधिकाः सऋणप्रदेति बोध्यम् । अत्र साध्यस्य सम्बन्धग्राह्यस्य दासदासी शिष्यादेर्नाम सम्बन्धिनोङ्काः साध्यन्तेत्यर्थः । यथा त ६, त ६, तुं ६, न ०, ग ३, भू ४, भा ४, नु ०, नि ०, न ०, गा ३, अ क ठ बादयस्तत्सम्बन्धिनश्चाङ्काः साध्यनामाक्षरस्वरसम्बन्धिन एकीकृता दाप्ता अष्टभक्ता यदि शेषांकः साधकनामाक्षरांकसंख्याष्टभागावशिष्टांकादूनस्तदा साध्यस्य साधकः ऋणप्रदः । अधिके तु गृह्णाति । साधकः साध्याद्धणमितिभावः । साधकाङ्कास्तु तत्र वर्गास्त एव तदंकास्तु रु २, रु २, म ५, न ०, न ०, र २, य १, न ०, भ ४, व ४, गाः ३, एतेऽपि एकादश एव अत्रापि साधकनामाक्षरसम्बन्ध्यंका एकीकृताऽऽटभक्ताः साधाङ्कादधिकशेषे साध्यस्य ऋणप्रदः साधकोल्पे तु गृह्णाति ॥ ७६ ॥

ऋणधनसाधनचक्रम्

साध्यांकाः	त ६	त ६	तु ६	न ०	ग ३	भू ४	भा ४	नु ०	नि ०	न्न ०	गा ३
	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
साधकांकाः	रु २	रु २	म ५	न ०	न ०	र २	य १	न ०	भ ४	व ४	गा १

चक्रनिर्माण-विधिः—ग्यारह कोष्टकों में त ६, त ६, तुं ६, न ०, ग ३, भू ४, भा ४, नु ०, नि ०, न्न ०, गा ३ लिखे । यह साध्य के अंक हैं । इसके नीचे अ क ठ बादि को लिखे और बाद में साधक के रु २, रु २, म ५, न ०, न ०, र २, य १, न ०, भ ४, व ४, गा ३ इत्यादि अंकों को भी लिखे । एक ही कोष्टक के द्वारा कार्य हो सकता है और चाहे तो साध्य और साधक दोनों का कोष्टक (चक्र) अलग भी बना सकते हैं । यहाँ पर एक ही चक्र सम्मिलित दिखलाया गया है ।

उदाहरण—राम सीता का धन-ऋण विचार करना है, अतः कोष्टक के द्वारा र् ०, आ २, म् ५, अ २, इन अंकों का योग ९ प्राप्त हुआ तथा सीता के नामाक्षरों का योग स ०, ई ०, त ३, आ ६ =९ हुआ । यहाँ पर राम साधक

और सीता साध्य हैं। इनके योगांकों में ८ का भाग देने पर दोनों का शेष १ बचता है अतः दोनों में समानता हुई।

स्वामी-सेवक, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य ये परस्पर साधक और साध्य होते हैं।

आतुरसाध्यासाध्यादिप्रश्ने ज्ञानमाह—

कोठ्ठाद्बतोऽक्षु च विसर्गनपुंसकोने-
ष्वंकास्तुलारिभसतीभृगुकानकाः स्युः।
दूतातुराह्वयतदैक्यदभक्त शेषे
जीवेद्गदी समधिके म्रियते समोने ॥ ७७ ॥

अन्वयः--कात् ठात् बात् विसर्ग नपुंसकोनेषु अक्षु तुलारिभसती भृगुकानका अङ्काः स्युः। दूतातुराह्वयतदैक्यदभक्तशेषे समधिके गदी जीवति। समोने म्रियते।

विजया—कात् ककारात्, ठात् ठकारात्, बात् बकारात् वर्णा लेखनीया। विसर्गः अः, नपुंसकाः ऋ ॠ ऌ ॡ, एतैः ऊनेषु रहितेषु स्वराचापि वर्णोपरि तु ६, ला ३, रि २, भ ४, स ७, ती ६, भृ ४, गु ३, का १, न ०, का १, अंका स्युः लेख्याः भवन्ति। दूतो प्रश्नकर्त्ता, आतुरः रोगी तयो आह्वयं नाम तस्य अङ्कैक्यं पृथक् पृथक् गृहीत्वा द ८ भक्तम् अष्टभिर्विभाजितम्, दूतांकशेषाद्गदिनो रोगिणोंके समधिके अधिके सति रोगी जीवेत्। दूताङ्कशेषाद्रोगिणोंके समे हीने च सति रोगी म्रियते।

कोष्टक (चक्र) निर्माण के लिए ऊपर की पंक्ति में तु ६, ला ३, रि २, भ ४, स ७, ती ६, भृ ४, गु ३, का १, न ०, का १ इन अंकों को एकादश कोष्ठकों में क्रमशः लिखकर उसके नीचे विसर्ग तथा नपुंसकातिरिक्त स्वरों को त था क कारादि ठ कारादि एवम् ब-कारादि वर्णों को लिखे। इस प्रकार आतुर-साध्यासाध्यचक्र बन जाता है। इसमें दूत और आतुर के नामाक्षरों की संख्या के योग में ८ का भाग पृथक्-पृथक् दें। यदि दूत के शेष से रोगी का शेष अधिक हो तो रोगी जीता है और दूत के शेष से रोगी का शेष सम या न्यून हो तो रोगी की मृत्यु होती है ॥ ७७ ॥

आतुरसाध्यासाध्यज्ञानचक्रम् ।

तु ६	ला ३	ोर २	भ ४	स ७	ती ६	भृ ४	गु ३	का १	न ०	का ३
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

उदाहरण--देवदत्त रोगी और यज्ञदत्त दूत है। रोगी के नामाक्षरों से (द ४, ए ४, व् ४, अ ६, द् ४, अ ६, त् ७, अ ६) कुलयोग ४८ में ८ का भाग दिया तो शेष तथा यज्ञदत्त के नामाक्षरों की संख्या का (य् ४, अ ६, ग् ३, अ ०, अ ६, द् ४, अ ६, त् ७, त् ७, अ ६) योग ४७ इसमें ८ का भाग देने से शेष १ बचा। यहाँ दूत के शेष से रोगी का शेष अधिक है अतः देवदत्त जोयेगा ।

रुग्ण प्रश्न एव विशेषमाह—

प्रश्नाज्झलां च प्रमितिः कयुक्तां भूयोरनिघ्ना लहृताऽथ शेषे ।
के जीवितं खे निरुजो मृतिर्ने भवेच्च तिथ्यां मरणाभिधायाम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः--प्रश्नाज्झलां प्रमितिः कयुक्तां भूयो च रनिघ्ना लहृताऽथ के शेषे जीवितं खे निरुजः ने मृतिः मरणाभिधायां तिथ्यां च भवेत् ।

विजया--प्रश्ने प्रश्नस्य प्रश्नवाच्यस्य जनस्योक्तस्य येऽचो हलश्च तेषा प्रमितिः प्रमाणं केनैकेनयुता । भूयः पुनः रे २ ण द्वाभ्यां च गुणिता । ले ३ न त्रिभिर्भक्ता तच्छेषं च यदैकं तदा रुग्णस्य जीवितं निर्दिशेत् । द्वयोस्तुशिष्टयोर्नितरां रोगं विनिर्दिशेत् । ने शून्ये तु शेषे तन्मरणं वदेत् । तदपि वर्णस्वर वशाद्या मृततिथिस्तस्यामेव वदेत् ।

भाषा--प्रश्न के समय प्रश्न करनेवाला जो कुछ कहता है (प्रश्नरूप में) उसके अच् और हल् वर्णों की उपरोक्त संख्या का योग कर उसमें १ जोड़ दे

तथा २ से गुणा कर तीन का भाग देने पर १ शेष में रोगी जीता है २ शेष में रोग बढ़ता और ० शेष में रोगी की मृत्यु होती है। इसी प्रकार वर्णस्वर के अनुसार मृततिथि का ज्ञान करे। अर्थात् वर्ण-स्वर के द्वारा मृतस्वर का ज्ञान कर जो मृतस्वर हो उसकी तिथि में मृत्यु कहे।

उदाहरण—'यज्ञदत्त कब अच्छा होगा' यह प्रश्न देवदत्त ने किया। इन प्रश्नाक्षरों अच् एवं हल् वर्णों का योग ९९ + १ = १०० × २ = २०० इसमें ३ का भाग दिया २०० ÷ ३ = शेष २ आया तथा लब्धि ६६ आई। अतः २ शेष के अनुसार अभी यज्ञदत्त का रोग और बढ़ेगा, ऐसा कहना चाहिए। यदि यह जानना हो कि 'यज्ञदत्त किस तिथि को मरेगा' तो मरणाभिधायां के अनुसार यज्ञदत्त का वर्णस्वर उकार है और उकार से मृत्युस्वर इकार है अतएव इकार की जया ३, ८, १३ तिथि होने के कारण यज्ञदत्त जया तिथि में मरेगा। इसी प्रकार मरे लोगों की मृत तिथि का ज्ञान भी किया जा सकता है ॥ ७८ ॥

॥ इति समरसारे ऋणधनातुरसाध्यासाध्यादि प्रकरणम् ॥

भविष्यदर्थसूचकं छायानरं पश्यति तत्प्रकारमाह—

प्रातः पृष्ठगते रवावनिमिषं छायां गले स्वां चिरं·
दृष्टवोर्द्ध्वं नयनेन यत्सिततरं छायानरं पश्यति।
तत्कर्णांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावेक्षणार्काश्वदिग्·
भूरामाक्षि समाः शिरोविगमतो मासांस्तु षट्जीवति ॥७९॥

अन्वयः—प्रातः पृष्ठगते रवावनिमिषं गलेस्वां चिरं छायां दृष्ट्वा उर्ध्वं नयनेन यत्सिततरं छायानरं पश्यति। शेषं सुगमम्।

विजया—प्रातः काले मेघाद्यैरनाच्छादिते विमलाकाशे रवौ पृष्ठगते अनावृत्तं च स्थले स्थित्वाऽर्कं पृष्ठभागे कृत्वा प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्। अनिमिषं निमेष रहितं निर्निमेषं चक्षुषी कुर्वन् सन् स्वां स्वकीयां चिरं चिरकालं गलस्थले दृष्ट्वा स्वकीयां दृष्टिं च तेनैव प्रकारेण उर्ध्वं नयेत्। अनेन प्रकारेण सिततरम् अतिशयेन श्वेतं छायावरं छायापुरुषं पश्यति। एवं शरद् ऋतावपि विमलरात्रिषु छाया पुरुषः दृश्यते। एवं दृष्टे फलमाह—तस्य पुरुषस्य छायानरस्य कर्णाभावे कर्णाभाव दर्शने

द्रष्टा अर्कं द्वादश वर्षाणि जीवति। द्रष्टा अंसद्वयास्यपार्श्वहृदयैर्विना छाया पुरुष दर्शने क्रमात् सप्त ७, दश १०, एक १, त्रि ३, द्वि २ संख्यानि जीवतीति ज्ञायते। शिरोविगमतः अशिरस्कच्छाया पुरुष दर्शने षण्मासान् जीवतीति बोध्यम्।

भाषा--प्रातःकाल में खुले मैदान में पश्चिमाभिमुख खड़े होकर अनिमिष दृष्टि से (टकटकी लगाकर) अपनी छाया को गले के पास बहुत देर तक देखे। और अचानक देखते हुए नेत्रों को ऊपर ले जाय, यह समझे कि अपने छाया को आकाश में देख रहे हैं ऐसा करने पर सफेद मानवाकृति छायापुरुष दृष्टि-गोचर होगा।

छाया पुरुष के कान के अभाव में १२ वर्ष, कन्धा न दिखे तो ७ वर्ष, हाथ न दिखे तो १० वर्ष, मुख न दिखलाई पड़े तो १ वर्ष, पार्श्व (कुक्षि) न दीख पड़े तो ३ वर्ष तक, हृदय न दिखलाई पड़े तो २ वर्ष तक और शिर न दिखलाई पड़े तो ६ मास तक देखने वाले व्यक्ति की आयु होती है॥ ७९॥

अत्र विशेषः—

हृद्रंध्रदृष्ट्या मुनिसंख्यमासान्
द्विदेहदृष्टौ तु मृतिस्तदैव।
सम्पूर्णदृष्टौ तु न वर्षमध्ये-
रोगो मृतिर्नेति वदन्ति सत्यम्॥ ८०॥

अन्वयः— हृद्रंध्रदृष्ट्या मुनिसंख्यमासान् द्विदेहदृष्टौ तु तदैव मृतिः। सम्पूर्ण दृष्टौ तु वर्षमध्ये न रोगो न मृति इति सत्यं वदन्ति।

विजया—छाया पुरुषस्य हृदये रन्ध्रं छिद्रं चेद्दृश्यते तदा द्रष्टा सप्तमासान् जीवति। द्विदेहदृष्टौ शरीरद्वयं चेद् दृश्यते छायापुंसः तदा झटिति मरणं जानीयात्। सम्पूर्णदृष्टौ सम्पूर्णे तु छाया पुरुष दर्शने सति वर्षमध्ये रोगः मरणं च न भवेत् इति सत्यं वदन्ति।

भाषा--छाया पुरुष के हृदय में छिद्र दिखलाई दे तो ७ माह में तथा दो शरीर दिखलाई दे तो अतिशीघ्र मृत्यु होती है। छाया पुरुष के शरीर में यदि किसी प्रकार का विकार नहीं है तो वर्ष भर न तो बिमार पड़ेगा न मरेगा॥८०॥

छाया पुरुष प्रसंगेन शकुनान्तरमाह—

स्नातस्य पूर्वं कर्णादेः शोषे प्रागुक्तवत्फलम् ।
सर्वाङ्गार्द्रस्य हृच्छोषे षण्मासाभ्यन्तरे मृतिः ॥ ८१ ॥

अन्वयः--सुगमम् ।

विजया--स्नातस्य कृतस्नानगात्रस्य शरीरस्य पुंसः कर्णादेः कर्णादिहस्त मुखपार्श्व हृदयादीनां प्रथमतः इतरांगेभ्यः पूर्वं शोषे पूर्वश्लोकोक्तं फलं बोध्यम् । यथा कर्ण शोषे द्वादशवर्षाणि, स्कन्ध शोषे सप्तवर्षाणि, हस्तशोषे दशवर्षाणि, मुखशोषे वर्षमेकं, पार्श्वशोषे त्रिवर्षाणि, हृदयशोषे युग्मवर्षाणि जीवनम् । सर्वाङ्गार्द्रस्य हृच्छोषे हृदयस्थले प्रथमतः शोषणे षण्मासमध्ये तस्य पुंसः पुरुषस्य मरणं विनिर्दिशेत् ।

भाषा--स्नान करने के बाद अपने गीले शरीर को ध्यान से देखने पर यदि कान, कन्धा, हाथ, मुख, पार्श्व, हृदय, शिर क्रमशः सूखे तो १२, ७, १०, १, ३, २ तथा ६ मास की आयु शेष समझें । यदि हृदय ही पहले सूख जाय तब भी ६ मास की आयु समझनी चाहिए ॥ ८१ ॥

उक्तं च--

स्नानाम्बुलिप्तगात्रस्य यस्यास्यं प्राक् प्रशुष्यति ।
गात्रेष्वार्द्रेषु सूर्यादिद्वयदर्शनम्·········इत्यादि ॥

अन्यदप्याह--

हस्ते न्यस्ते शिरसि यदि न च्छिन्नदण्डोऽस्य दृष्टः,
षण्मासान्तर्न मरणभयं सम्पुटे हस्तयोस्तु ।
न्यस्ते शीर्षे यदि च कदलीकोरकाभं तदन्तर्दृष्टं
नो भीस्तरति सलिले चेत्स्वशेफो न मृत्युः ॥ ८२ ॥

अन्वयः--शिरसि हस्ते न्यस्ते यदि अस्य छिन्नदण्डः न दृष्टः (तदा) षड्मासान्तर मरणभयं न । हस्तयोस्तु सम्पुटे शीर्षे न्यस्ते यदि च कदलीकोरकाभं तदन्तर्दृष्टं नो भीः । चेत्स्वशेफो सलिले तरति मृत्युः न ।

विजया--शिरसि स्वकीये हस्ते न्यस्ते सति यदि छिन्नदण्डो न दृश्यते तदा न मरणभयं भवेदिति ज्ञेयम् । अत्रैव प्रकारान्तरमाह–सम्पुट इति । हस्तयोस्तु सम्पुटे शीर्षे मूर्ध्नि न्यस्ते धृते सति तदन्तः तयोर्द्वयोः प्रकोष्ठयोरन्तरालं यदि कदलीकोरकाभं रम्भाकलिका तुल्यं चेद्दृष्टं तदा नो भीः मरणादेरिति शेषः। अन्यच्चाह–सलिले जले चेत्स्वशेफः प्रजननं लिङ्गमिति भावः स्वकीयं तरेन्न मज्जेत् तदा मृत्युर्न स्यात्।

भाषा--यदि हाथ को शिरपर लगाने से हस्तदण्ड टूटा हुआ न दिखाई दे तो छः महीने के भीतर मृत्यु का भय नहीं होता है । यदि दोनों हाथों का सम्पुट वनाकर शिरपर लगाने से सम्पुट की पोल के भीतर केला की कोर (चमक दार लाल कली) जैसी दिखाई दे तो मृत्यु आदि का भय नहीं है और यदि अपनी इन्द्रिय जल में नहीं डूबे तो भी मृत्यु नहीं होती है ॥ ८२ ॥

उक्तशकुनानामुपयोगं स्तुतिं चाह--

इमानि चिह्नानि विचार्य योद्धुं विनिश्चये स्वायुष एव यायात् ।
आहुर्हि मुख्यं शकुनं स्वदेहचिह्नानि बाह्यैः शकुनैः किमन्यैः ॥ ८३ ॥

अन्वयः--इमानि चिह्नानि विचार्य, स्वायुषः विनिश्चये एव योद्धुं यायात् । स्वदेह चिह्नानि शकुनं मुख्यं आहुः हि अन्यैः बाह्यैः शकुनैः किम् ।

विजया--इमानि प्रागुक्तानि चिह्नानि शरीरभवानि विचार्य स्वायुषः सतायां विनिश्चय एव योद्धुं शत्रुर्निर्गच्छेत् । न त्वल्पायुर्ज्ञाने । कथमेभिः शकुनमात्रैः स्वायुर्निश्चय इत्याह--आहुरिति । हि यतः कारणात्स्वदेह चिह्नानि मुख्य शकुनमाहुः गर्गादिमुनयः । अत एभिरायुर्निश्चय इत्यर्थः । अन्यैः बाह्यैः काकशिवादिवाशितरूपैः शकुनैः किंचिद्विसवादित्वात्किं प्रयोजनमित्यर्थः ।

भाषा--उपरोक्त चिह्नों को विचार कर आयुष्य का निश्चय करके फिर युद्ध करना चाहिए। अपने शरीर के चिह्नों के शकुन ही मुख्य शकुन कहे हैं । बाहर के खग मृग आदि के अन्य शकुन क्या हैं ।। ८३ ॥

॥ इति समरसारे शकुनप्रकरणम् ॥

शास्त्रप्रशंसनम्—

सकलस्वरशास्त्रमेतत्परिसंक्षिप्य मयान्यगादि सर्वम् ।
गुरुभक्ति युषोऽथ धर्मवृत्ते स्फुरतादेतदभीप्सितार्थसिद्धयैः ।। ८४ ।।

अन्वयः—एतद् सकलस्वरशास्त्रसारम् परिसंक्षिप्य मया न्यगादि । गुरुभक्तिजुषोऽथ धर्मवृत्तेः अभीप्सितार्थ सिद्धयै एतद् सर्वम् स्फुरताद् ।

विजया—सकलं समस्तं यत् स्वरशास्त्रम् ईशादि प्रणीतं तस्य सारम् अव्यभिचारात् अत्युपयोगाच्च गुरुत्वात्सारं संक्षिप्य सर्वं मया न्यागादि नाम यात्रांगादि उक्तम् । एतद् गुरुभक्तिजुषः गुरुभक्तस्य अथ च धर्मवृत्तेः धर्मवर्तनं यस्याभीप्सितार्थ सिद्ध्यै स्फुरतात् चमत्कुर्यादित्यर्थः ।

भाषा—यह सब सम्पूर्ण-स्वरशास्त्रों का सार संक्षेप में मैंने कहा है । यह गुरुभक्ति से ओत प्रोत एवं धर्मवृत्तिवालों के लिए सिद्धकारक होवे ।। ८४ ।।

ग्रन्थकृत्स्वगोत्रोत्कीर्तनस्वपूर्वजनामकथनपूर्वकं सम्बन्धमाह—

वंशे वत्समुनीश्वरस्य शिवदासाख्यादुरुख्यातितः,
सम्राडग्निचिदाप यस्य जनकः श्रीसूर्यदासोऽजनि ।
यन्मातुर्यशसा दिशो दश विशालाक्ष्यावलक्षाव्यधात्
स प्रज्यस्वरशास्त्रसार विचितिं रामो वसन्नैमिषे ।। ८५ ।।

।। इति श्रीरामचन्द्रसोमयाजिविरचितं समरसारंपूर्णतामगमत् ।।

अन्वयः—वत्समुनीश्वरस्य वंशे दुरुख्यातितः शिवदासाख्य यस्य जनकः सम्राड अग्निचिदाप श्रीसूर्यदासोऽजनि विशालाक्ष्या यन्मातुर्यशसा दशदिशो वलक्षा नैमिषे वसन् वत्सरामो प्राज्यस्वरशास्त्रसार विचितिं व्यधात् ।

विजया—वत्समुनीश्वरस्य वंशे कुले दुरुख्यातितः दुर्धर्षख्यातिमानति प्रसिद्धेतिभावः । शिवदासाख्या शिवदासनाम यस्य जनकः सम्राट् राजतुल्यः अग्निचित् सुपर्णचितिकारत्वात् श्रीसूर्यदासनामाऽजनि जन्म प्रापेति सम्बन्धः । यन्मातुर्विशालाक्ष्या यशसा दशदिशः वलक्षा धवलिता स रामचन्द्रनामा सोमयाजी

कविः नैमिषे नैमिषारण्ये वसन् प्राज्यं यत्स्वर शास्त्रं तस्य यः सारः अत्युपयुक्तोंशः तस्य विचितिं संचयं व्याधादकरोदित्यन्वयः ॥ इति ॥

भाषा—वत्समुनीश्वर के वंश में उत्पन्न पृथ्वी पर विख्यात् 'शिवदास' के पुत्र अग्निदेव की सेवा करनेवाले सम्राट् 'श्रीसूर्यदास' जिनके पिता और यश से दशों दिशाओं को धवलित करनेवाली 'विशालाक्षी' जिनकी माता थी। ऐसे नैमिषारण्यवासी रामाचार्य ने अनेक स्वरशास्त्रों का संक्षिप्त सारभाग संग्रह कर इस समरसार की रचना किया।

अर्थात् इनके पिता का नाम सूर्यदास, पितामह का नाम शिवदास माता का नाम विशालाक्षी और वत्स इनका गोत्र था। इनके पिता महान विद्वान् माता परम यशस्विनी, भ्राता पण्डित और कुटुम्ब विख्यात था ॥ ८५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

वलियाजिला स्फुट यशो बिगही निवासी ।
श्रीरामजन्म-अखिलं च व्यधात् सुव्याख्या ॥

●
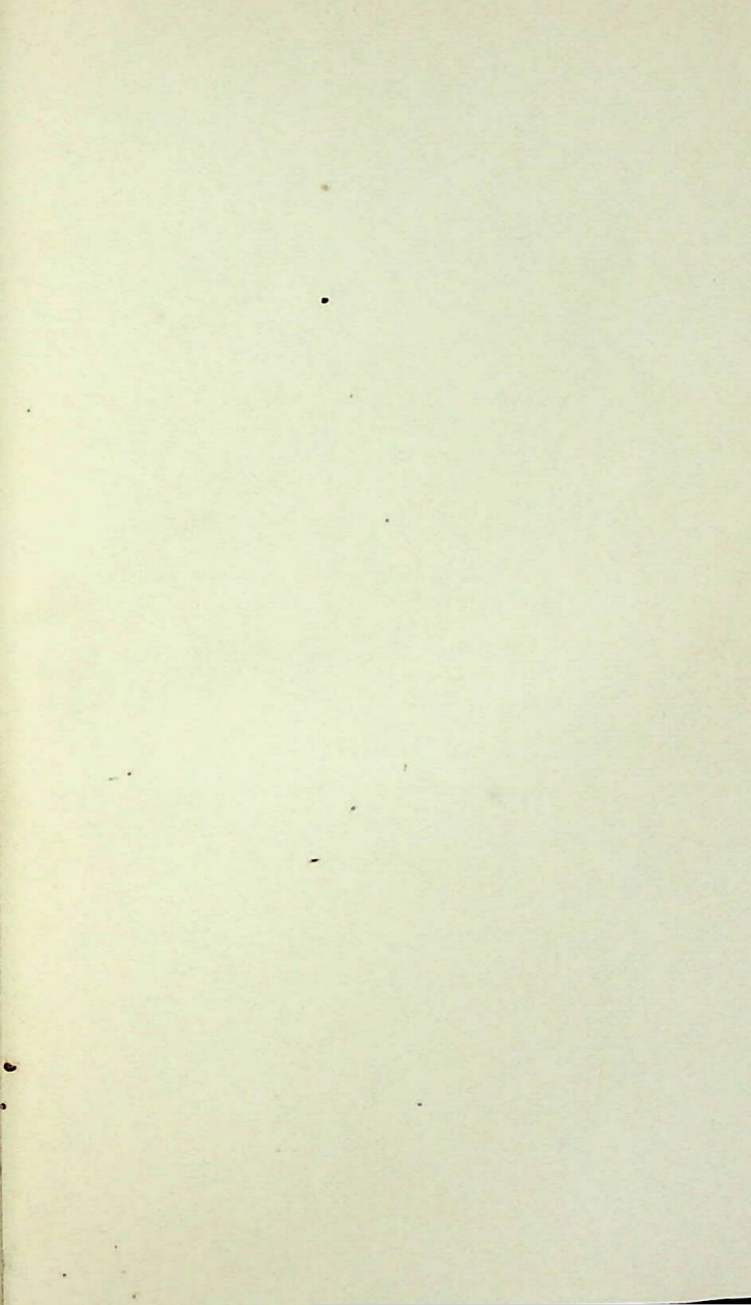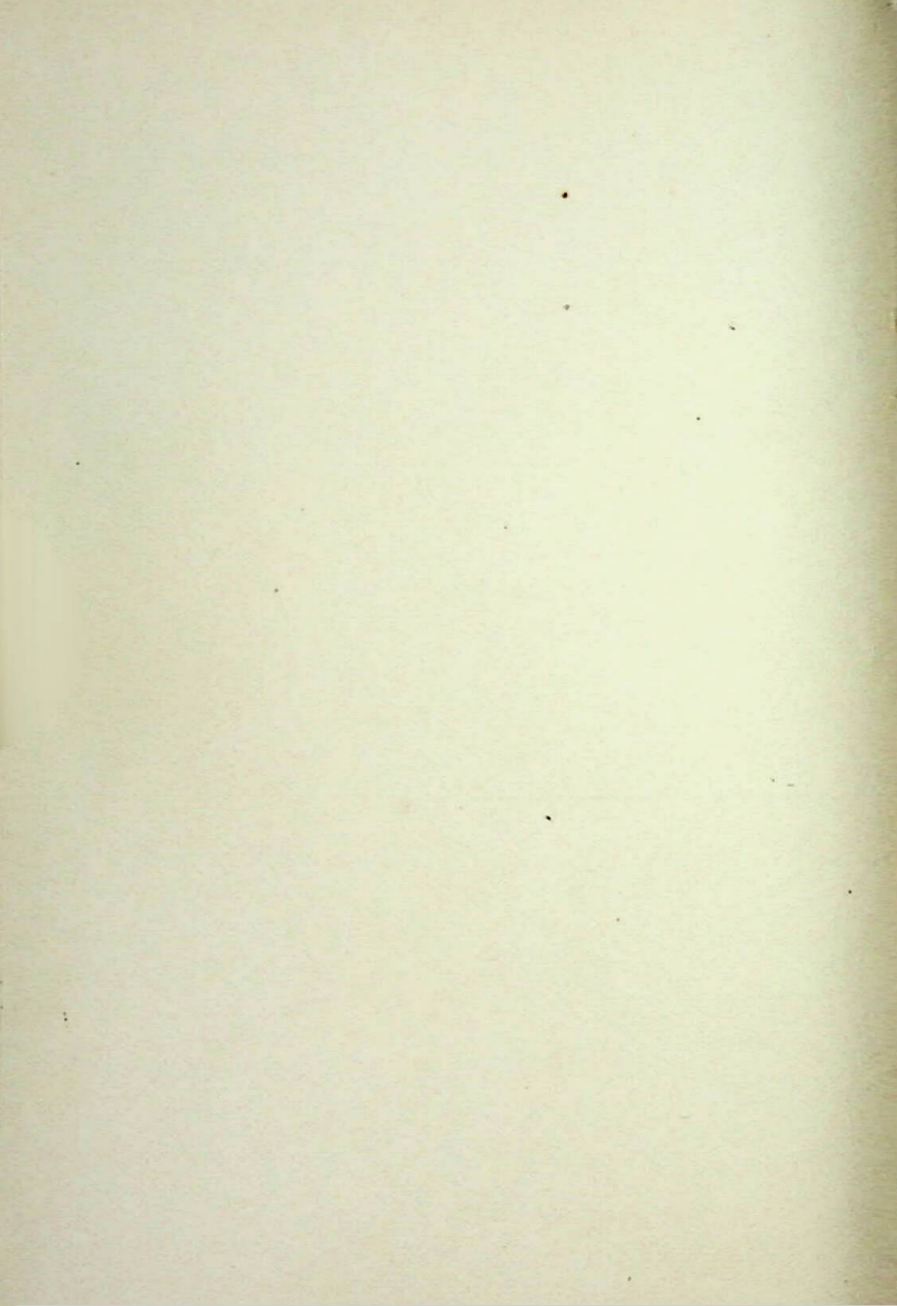
चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पोस्ट बाक्स नं० ११३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)